९६३

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्य

भूमिका ।

पुस्तकालय,
... भवन, ... काशी

: विदित हो कि परब्रह्म परमात्मा जो निराकार अव्यय निरंजनादि नामों से कहा गया है वही आकारवाला होकर इस सृष्टि की रचना कर वर्णाश्रम की व्यवस्था बांधी जिससे संसार का यथावत् कार्य चला जाय रहा है. जिसके प्रभाव से सृष्टि की उत्पत्ति स्थिति लय होता है, उसके मर्यादा का क्रम टूटने से सिवाय हानि के लाभ कब हो सकता है? किन्तु नहीं, देखिये ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र तथा ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास ये सब अपने अपने मर्यादापूर्वक जब काल व्यतीत करते थे उस समय राजा प्रजा सब प्रकार से प्रफुल्लित थी, वर्षा यथावतकाल में होती थी, राजा से प्रजा का पालन होता था, प्रजा सुख से रहती हुई राजा को कर देती थी, एक दूसरे से सहायता प्राप्त होती थी, बड़े छोटे में ईर्षा द्वेषादि नहीं था, परन्तु अब वह क्रम टूटने से राजा प्रजा दोनों दुःखी हैं । नियम यह है कि दुःख की प्रबलता में प्राणी का बुद्धिबल भी निर्बल हो जाता है। बुद्धि की निर्बलता में मनुष्य को यथार्थ वस्तु का ज्ञान नहीं होता है अर्थात् पूर्व को पश्चिम बतलाते हुए चलने लगता है, वह दशा इस समय हमारे देश में वर्त रही है। हमारे देशभाई अभी अपनी २ अज्ञानता की पेंट में पड़े हुवे सो रहे हैं "पीत्वा मोहमयी प्रमादमदिरा उन्मत्त भूतंजगत्" सुधार की नेंव वेदाऽनुसार प्रथम सीढ़ी ब्रह्मचर्य की है

ब्रह्मचर्य के प्रभाव से भीष्म जी बड़े प्रभावशाली बली और बुद्धिमान हुये जिसके राजनीति तथा बल की वन्दना की गई है, परशुराम जी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से २१ बार क्षत्रियों के वंश को विध्वंस किया, अंजनीकुमार हनुमान जी अद्वितीय बली और बुद्धिमान हुए जिन्होंने अपने बल से बड़े २ राक्षसों को मोहित किया, श्रीरामचंद्रजी ब्रह्मचर्य के प्रभाव से बहुत से राजाओं के मध्य में धनुष को खण्डित किया, बड़े भारी वीर राक्षसराट् रावण को मारा जिसके बंधन में सब देवता पड़े हुए थे और भवसागर से पार करनेवाला ज्ञानमय योगवाशिष्ठ को उत्पन्न किया जिसकी गाथा ज्ञानियों में अग्रगण्य हैं। जो ब्रह्मचर्य सुधार का मूल है उसको पुष्ट करना चाहिये। उसकी पुष्टता से गृहस्थाश्रम जो सब ऐश्वर्यों का घर और आश्रमों का भी मूल है उसका सुधार होगा वर्तमान काल में इसके आचरण बहुत बिगड़ गये हैं, इसीसे साधुमंडल भी पूरा लक्ष हो गया है, अठासी हज़ार ऋषियों से संसार फला-फूला था अब बावन लक्ष में राजा प्रजा दोनों दुःखी हैं इसका कारण गृहस्थाश्रम ठीक न चलने का है इसीसे कहा है "स्वधर्मे निधनं श्रेयः" अर्थात् स्वधर्म में स्थित रहने से प्राणी को दुःख नहीं व्यापता, न धर्म की हानि होती है और विवेक बना रहता है। विवेक के प्रभाव से वह प्राणी सब प्रकार से सुखी बना रहता है।

इसलिए द्विजों को चाहिये कि ब्रह्मचर्य की उन्नति करें इसीसे धर्म का सुधार और प्रजा की भलाई होगी "श्रुतिः—ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रम् विरक्षति" ब्रह्मचर्य से राज्य की रक्षा होती है अर्थात् वेदाऽनुसार क्षत्रीपुत्र ब्रह्मचर्य द्वारा विद्याओं का अभ्यास करेगा तो वह राज्य की रक्षा नीति से करेगा अन्यथा

तो प्रजा का शिकार करते हुए भी दया नहीं आवेगी कालां-तर में आप भी उसी दुःख की गति को भोगेगा।

यह आश्रम सब प्रकार श्रेयस्कर है अर्थात् ब्रह्मचर्य ही कल्पतरु, कामधेनु है, इससे हे भाइयो ! उन्नति करो।

यह ब्रह्मचर्य निरूपण बहुत ग्रन्थों से संग्रह करके सज्जनों के हितार्थ प्रकाशित करता हूं अतः सज्जन लोग परिश्रम को सफल करेंगे दृष्टिदोष, प्रेसादि दोष से जो कुछ भूलचूक हो वह बुधजन सुधारलेंगे।

योगाऽभ्यासी

श्रीसदाशिवनारायण चैतन्य ब्रह्मचारी,

बलुआघाट,

प्रयागराज।

श्री १०८ ईश्वर मठ
पुस्तकालय,
काशी

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

ब्रह्मचर्य निरूपण ।

ॐकाराऽऽकृतिमीश्वरं त्रिनयनं नत्वा परं गीयते ।
यत्तद्ब्रह्मपदं परावर विदे निर्वाणरूपं च यत् ॥
यद्विधिवद्विधृतं विधातृतनयै र्योगात्म विद्यापरैः ।
तत्संगृह्य निरूप्यते बुधमुदे श्रीब्रह्मचर्यं परम् ॥ १ ॥
सदाशिव पदाद्येन नारायणाख्य वर्णिना ।
प्रयागांतर्वालुकाख्य यमुनातटवासिना ॥ २ ॥

ब्रह्मचर्य लक्षणम् ।

भिक्षाचर्या च शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च ।
सन्ध्याकर्माग्नि कार्यं च धर्मोयं ब्रह्मचारिणाम् ॥
(कूर्म ।)

ब्रह्मचर्य सब आश्रमों का आदि और श्रेष्ठ आश्रम है क्योंकि बिना इसके गृहस्थाश्रमादि पूर्णतया शुद्ध रीति से नहीं चलते अर्थात् बिना वीर्यकी पुष्टता से न तो बलवती शुद्धाचरणवाली प्रजा उत्पन्न होती है, न वेद शास्त्रादि का क्रम से पठन पाठन होता है, बिना, अध्ययन के अग्निहोत्रादि यजन, दान, आतिथ्यादि पूजन ये सब कर्म नष्ट हो जाते हैं, जब ये कर्म नष्ट हुए तो उनकी वाणप्रस्थ, सन्यास में श्रद्धा नहीं होती कि इस

आश्रम को स्वीकार करें । यदि वह लोकलज्जा के कारण अथवा जहां तहां किसी के देखने से श्रद्धा उत्पन्न कर धारण भी कर लेते हैं तो उनसे यथार्थ आश्रम का धर्म नहीं चल सकता किन्तु उदरपोषण करते हुए वेष बनाये, काम क्रोधादि की गठरी लिये अविवेकता से कालक्षेप करते हैं न तो वानप्रस्थ ही को समझा और न सन्यासही को समझा कि यह क्या है? किन्तु घर छोड़ना ही उन्होंने ठीक समझा, तो क्या? इससे सुधार होता है कदापि नहीं । इससे ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। इस आश्रम के प्रभाव से सब आश्रम पुष्ट होते हैं बल, वीर्य, और बुद्धि की वृद्धि होती है, शास्त्र का जाननेवाला होता है और जब शास्त्री हुआ तो सब धर्मों का सुधार उससे होगा, उसके वचन में सत्यता होगी और पारलौकिक धर्म पूर्णतया सिद्ध होंगे। "ब्रह्मचर्यं विना तत्वज्ञानं न प्राप्नोति" ब्रह्मचर्य से रहित को शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती अर्थात् ब्रह्मचर्य से ही मोक्ष होता है। यथा छान्दोग्योपनिषदि०

तद्य एवैतं ब्रह्मचर्य्येणानुविन्दति तेषामेवैष ब्रह्म-लोकस्तेषाꣳसर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।

जो इस ब्रह्मलोक को स्त्री और विषयों की तृष्णा के त्याग रूप ब्रह्मचर्य से आचार्य के उपदेश द्वारा जानता है वही इस ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है अन्य नहीं, इससे ब्रह्मजिज्ञासु को ब्रह्मचर्य परम साधन है। ब्रह्मचर्य क्या है! किस को कहते हैं?

अथ यद्यज्ञ इत्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्येण ह्येव योऽज्ञातातं विन्दतेऽथ यदिष्टमित्याचक्षते ब्रह्मचर्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येणह्येवेष्ट्वाऽऽत्मानमनु विन्दते ।

अब जिसको "यज्ञ" ऐसा कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है। इससे जो ज्ञाता (ज्ञानी) हैं वह ब्रह्मचर्य,से ही उसको प्राप्त होते हैं और जिसके इष्ट (पूजन) इस प्रकार कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है इससे ब्रह्मचर्य से ही पूजा के आत्मा को पाते हैं।

अथ यत्सत्रायण मित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येव सत आत्मनस्त्राणं विन्दतेऽथ यन्मौन मित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्ब्रह्मचर्य्येण ह्येवात्मानमनुविद्यमनुते ।

जिसको "सत्रायण" (बहुत से यजमानों की क्रिया वैदिक कर्म सत्रायण है) ऐसा कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है; इस ब्रह्मचर्य से ही सत् नित्य आत्मा के त्राण-(रक्षण) को पाते हैं। जिसको "मौन" ऐसा कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है इससे ब्रह्मचर्य से ही आत्मा को जानि के मनन (चिन्तन) करता है।

अथ यदनाशकायन मित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तदेष ह्यात्मा न नश्यति यं ब्रह्मचर्य्येणानुविन्दतेऽथ यदरण्यायन मित्याचक्षते ब्रह्मचर्य्यमेव तदरश्चह वैण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके तृतीयस्यामितो दिवि तदैरं मदीयॅं सरस्तदश्वत्थः सोमसवनस्तदपराजिता पूर्ब्रह्मणः प्रभुविमितॅं हिरण्मयम् ।

जिसको अनाशकायन (अनशन) ऐसे कहते हैं वह ब्रह्मचर्य है। जिस आत्मा को ब्रह्मचर्य से जानते हैं वह आत्मा का नाश नहीं होता है। जिसको अरण्यायन (अरण्यवास) ऐसे कहते हैं वह ब्रह्मचर्य ही है, वहाँ इससे तृतीय स्वर्ग रूप ब्रह्मलोक में अर और ण्य शब्द वाच्य दो अर्णव (समुद्र) हैं,

और वहां ऐर (अन्नमय रसपूर्ण) और मदीय "नाम" उसके उपयोग करनेवाले को हर्ष का एक सर है और वहांही अश्वत्थ वृक्ष नाम करके सोमसवन है और ब्रह्मा की अपराजिता पुरी है और ब्रह्मारूप प्रभु करके सुवर्ण (सोना) का मंडप है। यहाँ ब्रह्मा नाम से हिरण्यगर्भ जानना।

तद्य एवैतावरं चण्यश्चार्णवौ ब्रह्मलोके ब्रह्मचर्येणानुविन्दति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳसर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।

वहां ब्रह्मलोक में जो इन अर और एय दो समुद्रों को ब्रह्मचर्य से प्राप्त होते हैं उन्हीं को यह ब्रह्मलोक होते हैं इससे ब्रह्मवित् को यह ब्रह्मचर्य परमसाधन है। अभिप्राय यह है कि जो पूर्व कह आये अर्थात् यज्ञ, इष्ट सत्रायण, मौन, अनशन, अरण्यवास यह समग्र ब्रह्मचर्य के ही लक्षण हैं। इस प्रकार साधनयुक्त ब्रह्मचारी ही उक्त ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है अन्य नहीं। इससे ब्रह्मचर्य सब से श्रेष्ठ पन्थ है, जिज्ञासुओं को धारण करना चाहिये।

"यदिच्छन्तोब्रह्मचर्यं चरन्ति"।

(कठोपनिषद् ।)

जिस पद को प्राप्त "मोक्ष" करने के वास्ते ब्रह्मचर्य व्रत किया जाता है।

यस्तूपनयनादेत दामृत्योर्व्रतमाचरेत् ।
स नैष्ठिकोब्रह्मचारी ब्रह्मसायुज्यमाप्नुयात् ।

(व्यासः ।)

जो यज्ञोपवीत से लेकर मरण पर्यंत इस व्रत को करता है वह नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मलोक (मोक्ष) को प्राप्त होता है।

एवं चरति यो विप्रो ब्रह्मचर्य्यमतन्द्रितः ।
सगच्छत्युत्तमं स्थानं न चा सौ जायते पुनः ॥

(विष्णु संहितायाम् ।)

जो ब्राह्मण नियम से ब्रह्मचर्य व्रत को करता है वह श्रेष्ठ स्थान (मोक्ष) को प्राप्त होता है फिर उसका जन्म नहीं होता ।

न विवाहो न सन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ।
इमं यो विधिमास्थाय त्यजेद्देहमतन्द्रितः ।
नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढ़व्रतः ।

(हारीतः ।)

नैष्ठिक ब्रह्मचारी को न विवाह है और न सन्यास कहा है अर्थात् यह न करे इस प्रकार नियमपूर्वक पुष्टता से व्रत को करता हुआ शरीर को त्याग दे फिर वह ब्रह्मचारी इस भूलोक में नहीं आता है ।

ब्रह्मचारिणे शान्ताय दान्ताय गुरुभक्ताय हंसहंसेति सदाध्यायन् सर्वेषु देहेषु व्याप्य वर्तते ।

(हंसोपनिषद् ।)

इंद्रियों सहित मन को जीतकर गुरुभक्त ब्रह्मचारी सब देहों मे विद्यमान हंस स्वरूप आत्मा का सदा ध्यान करे ।

इस प्रकार ब्रह्मचर्य की श्रेष्ठता के बहुत से श्रुति स्मृति के प्रमाण हैं । और इस आश्रम को पुष्ट करने के वास्ते श्री-विष्णु भगवान ने चौबीस अवतार में प्रथम अवतार सनका-दिकों का धारण किया है ।

स एव प्रथमोदेवः कौमारं सर्गमास्थितः ।
चचार दुश्चरं ब्रह्मा ब्रह्मचर्यमखण्डितम् ॥
(भागवते प्रथम स्कन्धे ।)

उन्हीं नारायण ने प्रथम ब्रह्मणरूपी सनत्कुमार का अवतार ले और जो किसी से न हो सके ऐसा अखण्डित (कभी न टूटनेवाला) पुष्ट ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया ।

यह ब्रह्मचर्य मूंजी मेखला रहित ब्रह्मविद्या में विचरनेवाला ब्रह्मरूप ही है । यथा—

चरते ब्रह्म विद्यासु ब्रह्मचारी स कथ्यते ।

जो ब्रह्मविद्या के विचार में रहा करे उसको ब्रह्मचारी कहते हैं । तथाच—

ब्रह्मभावेमनश्चारं ब्रह्मचर्यं परन्तप ॥
आसान्सनत्कुमारश्च ऋभुश्चैवोर्द्धरेतसौ ।
सनकः सनातनश्चैव तथैव च सनन्दनः ॥
उत्पन्नासमकालंते बुद्धयातीन्द्रियदर्शनाः ।
उत्पन्नाः प्रतिभात्मानो जगतां स्थिति हेतवः ॥
नारप्स्यन्ते च कर्माणि तापत्रय विवर्जिताः ।
अल्पसौख्यं बहुक्लेशं जराशोक समन्वितम् ॥
जीवनं मरणं चैव सम्भवश्च पुनः पुनः ।
यथोत्पन्नस्तथैवेह कुमारः स ह्योच्यतेः ॥
(लिङ्ग पुराणे ।)

ये चारों भाई (सनक, सनन्दन, सनातन सनत्कुमार) ब्रह्मचर्य में स्थित रहते हुए दिगम्बर (वस्त्र रहित नग्न) तप

स्वरूप, सब प्रकार के शङ्काओं को दूर करनेवाले, ऋषि तथा देवताओं में माननीय, जटाधारी और ज्ञान मार्ग में विचरनेवाले हैं अर्थात् यह ब्रह्मचर्य कर्म मार्ग को पुष्ट करता हुआ ज्ञान मार्ग में स्थित है।

दूसरा नैष्ठिक ब्रह्मचर्य पुष्ट करने को विष्णु भगवान का नरनारायण नाम से अवतार हुआ जोकि उक्त लक्षणों से युक्त मूंजी मेखला, कृष्णाजिन और जटाजूट सहित कर्म मार्ग में स्थित प्रदर्शित होते हुए, संसार के कल्याणार्थ बदरिकाश्रम में सनातन से तप करते हैं।

एवं चिन्तयताऽनेन कृष्णाजिन धरौमुनी।
समुन्नत जटाधारी दृष्टौ धर्म सुतौतदा॥

(देवी भागवते।)

दैत्यराट् प्रहलाद को अरण्य (जंगल) में मुनि का सुशोभित स्थान देखकर दर्शन करने की इच्छा हुई, ऐसा विचार कर आश्रम में गये। वहां धर्म के पुत्र नरनारायण मुनि को काला मृगचर्म धारण किये हुए अर्थात् ब्रह्मचर्य में स्थित मूंजी मेखला दंड, कमंडल युक्त कृष्ण मृगचर्म का डुपट्टा ओढ़े हुए जटाजूट से युक्त देखा।

भगवान का जो दो अवतार ब्रह्मचर्य ही के निमित्त हुआ तो इससे सिद्ध होता है कि मोक्ष प्राप्ति के बारे में कर्म और ज्ञान दोनों की आवश्यकता है इससे कर्मरूप नरनारायण और ज्ञान रूप, बालभावी सनकादि दो अवतार ब्रह्मचर्य प्रतिपादनार्थ हुए। और भी श्रुतियों से प्रमाणित माहात्म्य।

ब्रह्मचर्य माहात्म्य—अथर्ववेदे एकादश काण्डे।

ब्रह्मचारीष्णंश्चरति रोदसी उभे तस्मिन् देवाः सं मनसो भवन्ति। सदाधार पृथिवीं दिवञ्च स आचार्यं तपसा पिपर्ति ॥ १ ॥

"ब्रह्मणि वेदात्मके अध्येतव्ये चरितुम् शीलम् यस्य स तथोक्तः ब्रह्मचारी"। ब्रह्म जो वेदरूप उसके पठन पाठन में रहने का स्वभाव है जिसका वह ब्रह्मचारी कहाता है। मंत्र का अर्थ। ब्रह्मचारी अपने तप से पृथिवी आकाश दोनों में व्याप्त होता हुआ नियम में रहता है उस ब्रह्मचारी में इन्द्रादि देवता अनुग्रह बुद्धियुक्त रहते हैं और तप से पृथिवी आकाश को धारण (पालन) करता है तदनुसार अपने गुरू को भी सन्मार्ग आचरण से पालन करता है।

ब्रह्मचारिणं पितरो देवजनाः पृथग्देवा अनुसंयन्ति सर्वे। गन्धर्वा एनमन्वायन् त्रयस्त्रिंशत्त्रिशताः षट् सहस्राः सर्वान्त्सदेवांस्तपसापिपर्ति ॥ २ ॥

पितरगण तथा इन्द्रादि सब देवगण तथा विश्वावसु प्रभृति गंधर्वगण पृथक् २ ब्रह्मचारी के रक्षार्थ पीछे चलते हैं और ब्रह्मचारी अपने शुद्धाचरण तप से तैंतीस तीन सौ तीन, छ हज़ार देवताओं का पालन करता है।

आचार्य उपनयमानो ब्रह्मचारिणं कृणुते गर्भमन्तः तंरात्रीस्तिस्रउदरेबिभर्तितंजातं द्रष्टुमभि संयन्ति देवाः ३

आचार्य उपनयन के अनन्तर ब्रह्मचारी को विद्या शरीर के मध्य में कर देता है वह विद्या ब्रह्मचारी को अपने गर्भ में तीन

दिन धारण करती है चौथे दिन वह विद्यामय शरीर से उत्पन्न होता है तब सब देवता उसे देखने को आते हैं।

इयं समित् पृथिवी द्यौर्द्वितीयोतान्तरिक्षं समिधा पृणाति। ब्रह्मचारी समिधामेखलया श्रमेण लोकांस्तपसा पिपर्ति ॥ ४ ॥

यह पृथिवी प्रथम समिधा, स्वर्ग दूसरी समिध और तीसरी अन्तरिक्ष समिध है अर्थात् अग्नि में छोड़ी हुई तीनों समिध से और मूँजी मेखला धारण से तथा इन्द्रिय निग्रहजनित दुःख रूप श्रम और ब्रह्मचर्यव्रत, वेदाध्ययन रूप तप से तीनों लोकों का पालन करता है।

पूर्वोजातो ब्रह्मणो ब्रह्मचारी धर्मं वसानस्तपसोदतिष्ठत्। तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्म ज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ ५ ॥

सत्य ज्ञानादि लक्षण ब्रह्म से प्रथम ब्रह्मचारी उत्पन्न हुआ और धर्मरूप वस्त्र धारणकर तप के साथ उठा पश्चात् ज्येष्ठ ब्रह्म अर्थात् वेदात्मक और सब देवता अमृत के समान भोग्य के योग्य वस्तु के साथ उत्पन्न हुए अर्थात् ब्रह्मचारी सबसे प्रथम है।

ब्रह्मचर्येति समिधा समिद्धः कार्ष्णं वसानो दीक्षितो-दीर्घश्मश्रुः। स सद्य एति पूर्वस्मादुत्तरं समुद्रं लोकान्त्संगृभ्य मुहुराचरिक्रत् ॥ ६ ॥

समिध से युक्त, काले मृग का चर्म ओढ़े, दीक्षा को प्राप्त, बालों को बढ़ाये हुए (जटाधारी) भिक्षाचरण से निर्वाह करता

हुआ पूर्व समुद्र से उत्तर समुद्र तक तपोबल से व्याप्त रहता है अर्थात् सब लोकों को अपने वश में कर सकता है।

ब्रह्मचारीजनयन् ब्रह्मापोलोकं प्रजापतिं परमेष्ठिनं विराजम्। गर्भोभूत्वामृतस्य योनाविन्द्रो ह भूत्वा सुरांस्ततर्ह ॥ ७ ॥

उक्त लक्षणवाला ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य के महिमा से ब्रह्म (ब्राह्मणजाति) अप (गंगादि नदियां) स्वर्गादि लोक प्रजापति तथा ब्रह्मा आदिकों को ब्रह्म की प्रकृति में प्रथम आप उत्पन्न होकर पैदा करता है पश्चात् इन्द्र होकर असुरों का हनन करता है।

आचार्यस्ततक्ष नभसीउभेइमेउर्वी गम्भीरे पृथिवीं दिवञ्च। ते रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तस्मिन्देवाः संमनसोभवन्ति ॥ ८ ॥

आचार्य विस्तीर्ण; (फैला हुआ) गम्भीर, दो प्रकार के आकाश और पृथिवी को उत्पन्न करता है और ब्रह्मचारी अपने तपोबल से आचार्य सहित इन सबों की रक्षा करता है ऐसे ब्रह्मचारी पर सब देवता प्रसन्न रहते हैं।

इमां भूमिं पृथिवीं ब्रह्मचारी भिक्षामाजभार प्रथमो दिवञ्च। तेकृत्वासमिधावुपास्ते तयोरार्पिता भुवनानि विश्वा ॥ ९ ॥

ब्रह्मचारी इस पृथिवी को प्रथम भिक्षा में लाया, स्वर्गलोक को दूसरी भिक्षा करके लाया। इन दोनों को समिध बनाकर

अग्नि की उपासना करता है तो सब प्राणी मात्र इसी के आश्रय रहते हैं।

अर्वागन्यः परो अन्यो दिवस्पृष्ठाद्गुहानिधी निहितौ ब्राह्मणस्य। तौ रक्षति तपसा ब्रह्मचारी तत् केवलं कृणुते ब्रह्मविद्वान् ॥ १० ॥

स्वर्ग के ऊपर अज्ञात भाग में ब्रह्मरूपनिधि है और नीचे भूलोक में आचार्य के हृदयरूप गुहा में वेदरूपनिधि है। इन दोनों निधियों को ब्रह्मचारी अपने तपोबल से रक्षा करता है। वेद के जाननेवाला विद्वान इन दोनों को ब्रह्म मानता है॥ इति तृतीय अनुवाके प्रथमं सूक्तं।

अर्वागन्य इतो अन्यः पृथिव्या अग्नी समेतो नभसी अन्तरे मे। तयोः श्रयन्ते रश्मयोधि दृढ़ास्ताना तिष्ठति तपसा ब्रह्मचारी ॥ ११ ॥

इस पृथिवी के नीचे के देश में एक अग्नि है जो सूर्य के उदय होने से पहिले रहता है और दूसरा पार्थिव अग्नि है जो पृथिवी के ऊपर रहता है फिर सूर्य के उदय होने पर ये दोनों अग्नि, पृथिवी और आकाश के बीच में आपस में मिल जाते हैं पश्चात् सूर्य अग्नि के मिलाप से किरण अति दृढ़ होके अंतरिक्ष में रहती हैं इस प्रकार दोनों अग्नि सहित पृथिवी को ब्रह्मचारी अपने तप की महिमा से अधिदेवता होके प्राप्त होता है।

अभिक्रन्दन्स्तनयन्नरुणः शितिङ्गो बृहच्छेपोनुभूमौ जभार। ब्रह्मचारी सिञ्चति सानौरेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ १२ ॥

चारों तरफ से शब्द करता हुआ अर्थात् गर्जता हुआ श्वेत वर्ण जलपूर्ण मेघ को प्राप्त होकर तथा वरुण, बढ़ी हुई अपनी उत्पत्ति को पृथिवी पर धारण करता है उससे ब्रह्मचारी अपने तप की महिमा से सब जगत के उत्पन्न करनेवाले जल अर्थात् वरुण के वीर्य को ऊंचे देशों में बरसता है। अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचारी के ऊर्ध्वरेता होने का यह फल है कि समय पर जलवृष्टि होती है। अब जब से ब्रह्मचर्य की प्रणाली टूट गई है तब से खंडित ही बरसा होती है। लोगों को चाहिये कि इसकी वृद्धि तन मन धन से करें।

अग्नौसूर्ये चन्द्रमसि मातरिश्वन् ब्रह्मचार्यप्सु समिधमादधाति। तासामर्चींषि पृथगभ्रेचरन्ति तासामाज्यं पुरुषोवर्षमापः ॥ १३ ॥

ब्रह्मचारी उस अग्नि में जो पृथिवी में है और सूर्य में, जो अन्तरिक्ष में है जो चन्द्रमा में, वायु में और जल में है उनके बढ़ानेवाले पदार्थ के पहुंचाने के लिए समिध की आहुति छोड़ता है उनकी किरणें अलग अलग आकाश में फैलती हैं उनसे क्रम से घी, पुरुष, वर्षा जलाशयादि होते हैं।

आचार्यो मृत्युर्वरुणः सोमओषधयः पयः ।
जीमूताआसन्सत्वानस्तैरिदं स्वराभृतम् ॥ १४ ॥

आचार्य ही अपराध से रुष्ट होने पर मृत्युरूप है, वही सेवा द्वारा प्रसन्न होने पर वरुणरूप अर्थात् पापों से बचानेवाले हैं, वही चन्द्रमारूप प्रसन्न करनेवाले हैं, उसीसे यवादिक अन्न, दुग्धादि रस मिलते हैं, वही वरुणरूप आचार्य के अनुचर मेघ जल वृष्टि से जगत को पोषित (पालन) करते हैं

अमा घृतं कृणुते केवल माचार्योभूत्वा वरुणो यद्यदै-च्छत् प्रजापतौ । तद्ब्रह्मचारी प्रायच्छत्स्वान् मित्रो अध्यात्मनः ॥ १५ ॥

वरुण देव ने आचार्य होकर अपने सहित जल को किया और वही वरुणरूप आचार्य ने अपने पिता ब्रह्मा से जिस २ फल की इच्छा किया, मित्रदेव ब्रह्मचारी होकर अपने ब्रह्मचर्य के माहात्म्य से अपने शरीर की अपेक्षा न करके वरुणरूप आचार्य को इच्छित फल देता है। अभिप्राय यह है कि जिस गुरु से विद्या पढ़े उसके आज्ञानुसार द्रव्यादि उपार्जन कर गुरु का संतोष करे।

आचार्यो ब्रह्मचारी ब्रह्मचारी प्रजापतिः ।
प्रजापतिर्विराजति विराडिन्द्रो भवद्वशी ॥ १६ ॥

आचार्य पहिले विद्या को उपदेश करके पश्चात् ब्रह्मचारी के हृदय में प्रविष्ट होता है तब वह ब्रह्मचारी अपने ब्रह्मचर्य तप के प्रभाव से जगत का उत्पन्न करनेवाला प्रजापति हुआ। वह प्रजापति विराट् हुआ। वह विराट् स्वतंत्र इन्द्र हुआ। आशय यह है कि आचार्य परंपरा से सर्वदेवमय है।

ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति ।
आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छति ॥ १७ ॥

ब्रह्मचर्य रूप तप अर्थात् समिध हवन, भिक्षाचरण, वीर्य की रक्षा, गुरुसेवा, उपवासादि व्रत नियम से राजा अपने राज्य की विशेषरूप से रक्षा करता है। जिस राजा के देश में ब्रह्मचर्य से युक्त पुरुष रहते हैं उसका राज्य चारों तरफ़ से बढ़ता है, आचार्य भी ब्रह्मचर्य नियम से शिष्य की इच्छा

करता है अर्थात् शिष्य लोग ब्रह्मचारी ही आचार्य के समीप पठनार्थ जाते हैं।

ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।
अनड्वान् ब्रह्मचर्येणाश्वोघासं जिगीर्षति॥ १८॥

ब्रह्मचर्य ही के प्रताप से कन्या युवा (जवान) श्रेष्ठ पति पाती है तथा वृषभ (बैल) भी गाड़ी खींचना आदि प्रबल कामों को कर सकता है और उसी ब्रह्मचर्य से घोड़ा तृणादि खाता हुआ सवारी में वेग से काम देता है।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।
इन्द्रोह ब्रह्मचर्येण देवेभ्यः स्वराभरत्॥ १९॥

ब्रह्मचर्य रूप तप से देवता अमर हैं और इन्द्र ब्रह्मचर्य से ही स्वर्गलोक का राजा होकर देवताओं का पालन करता है।

ओषधयो भूतभव्य महोरात्रे वनस्पतिः।
संवत्सरः सहर्तुभि स्ते जाता ब्रह्मचारिणः॥ २०॥

इति द्वितीय सूक्तम्॥

यवादि अन्न गुरुच्यादि लता और वृक्ष, रात्रिदिन ऋतुओं सहित संवत्सर (वर्ष) बीता हुआ और आनेवाला काल, ये सब ब्रह्मचारी की ही तपो महिमा से होते हैं॥ दूसरा सूक्त हुआ।

पार्थिवादिव्या पशव आरण्या ग्राम्याश्च ये।
अपक्षाः पक्षिणश्च ये ते जाता ब्रह्मचारिणः॥२१॥

भूमि के रहनेवाले, आकाश में उड़नेवाले, वन और ग्राम के पशु, बिना पंख के और पंखवाले जीव ये सब ब्रह्मचारी के ब्रह्मचर्य के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं।

पृथक् सर्वे प्राजापत्याः प्राणानात्म सु विभ्रति ।
तान्त्सर्वान् ब्रह्म रक्षति ब्रह्मचारिण्याभृतम् ॥२२॥

ब्रह्मा के उत्पन्न किये हुए सर्व देव मनुष्यादि अपने अपने शरीरों में अनेक प्रकार के प्राणों को अलग २ धारण करते हैं उन सब प्राणों को ब्रह्मचारी आचार्य के मुख से अध्ययन द्वारा प्राप्त वेद के प्रभाव से रक्षा करता है।

देवानामेतत् परिषूत मनभ्यारूढं चरति रोचमानम् । तस्माज्जातं ब्राह्मणं ब्रह्मज्येष्ठं देवाश्च सर्वे अमृतेन साकम् ॥ २३ ॥

यह प्रत्यक्ष परब्रह्म जिसको देवताओं ने आत्मा करके माना है वह अपने प्रकाश चैतन्यरूप से प्रकाशित जो सर्वोपरि विराजमान है उससे ब्राह्मणों का सर्वस्व वेद और अपने उपभोग्य अमृत सहित सब देवता उत्पन्न हुए।

ब्रह्मचारी ब्रह्मभ्राजद्बिभर्ति तस्मिन् देवा अधि विश्वे समोताः । प्राणापानौ जनयन्नाद् व्यानं वाचं मनोहृदयं ब्रह्ममेधाम् ॥ २४ ॥

ब्रह्मचारी प्रकाशमान वेदों को धारण करता है और उसीमें सब देवता बसते हैं। यथा श्रुतिः "यावतीर्वैदेवतास्ताः सर्वा वेदविदि ब्राह्मणेवसन्ति" वही ब्रह्मचारी प्राण, अपान और व्यान वायु, वाणी, मन, हृदय और बुद्धि आदि को उत्पन्न करता हुआ रहता है। आगे दो मंत्रों से ब्रह्मचारी की प्रार्थना है।

चक्षुः श्रोत्रं यशोऽस्मासु धेह्यन्नं रेतो लोहित मुदरम् ॥ २५ ॥ तानि कल्पद्ब्रह्मचारी सलिलस्य पृष्ठे तपो-

स्तिष्ठत् तप्यमानः समुद्रे। स स्नातो बभ्रुः पिङ्गलः पृथिव्यां बहुरोचते ॥ २६ ॥ इति तृतीय सूक्तम् ॥

सब लोग ब्रह्मचारी से ऐसी प्रार्थना करें कि हे ब्रह्मचारी हमलोगों के नेत्र कर्णादि इंद्रियों की शक्ति तथा यश की प्रबलता हो अर्थात् अंधे बहिरे आदि न हों। भोजनार्थ अन्न, पुत्रोत्पत्तिनिमित्तवीर्य, शरीरपुष्टि निमित्त रक्त दीजिये। क्योंकि इन सबों के उत्पन्न करनेवाले आप ही हैं और आप जल के मध्य या समुद्र में तप करते रहते हैं और नित्य स्नान करके पवित्र भूरे या पीले रंगवाले होकर पृथिवी पर विशेष करके प्रकाशमान हो। यह सब अर्थ सायनभाष्यानुसार है

अभिप्राय यह है कि ब्रह्मचर्य अग्नि की ज्वाला है जैसे अग्नि सब वस्तुमात्र के दहन करने में समर्थ है ऐसे ही अग्नि-होत्र तथा वेदाध्ययनादि व्रतों से प्रकाशमान अग्निवत ब्रह्म-चर्य भी दुःख को निवृत्त करता है इसमें संदेह नहीं है।

देखिये नचिकेता के ब्रह्मचर्य को अग्निवत देखकर यम-राज प्रसन्न हो तीन वर प्रदान किया और नचिकेता के नाम की अग्नि भी दिया अर्थात् नचिकेता नाम की अग्नि हुई यह कठवल्ली उपनिषद् में है और वामन जी के ब्रह्मचर्य के तेज को देखकर ही दैत्यराट् बलि मोहित हो समग्र राज्यदान कर दिया। जिस दान के प्रभाव से आगे होनेवाले मन्वंतर में स्वर्ग का सुख भोगता हुआ इन्द्र होगा यह भागवत में प्रसिद्ध कथा है और श्रीरामचन्द्र जी या कृष्णजी ने भी धर्मरक्षा के निमित्त ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया है इसके प्रभाव से बहुत से दैत्यों का वध किया और वीर्य की पुष्टता से बहुत से संतान हृष्ट पुष्ट प्रद्युम्न शाम्बादि अतिरथी उत्पन्न किये, इसपर यदि कोई यह कहे कि यह पुरानी गाथा है तो देखिये इसी कलि में राजा

परीक्षित का पुत्र जनमेजय पिता का वैर (शत्रुत्व) समझकर सर्पों को विध्वंस करने के निमित्त दृढ़ प्रतिज्ञा करके यज्ञ किया उसमें त्रैलोक्य के बहुतेरे सर्प नष्ट हो गये और शेष हो रहे थे कि इतने ही में आस्तिक ऋषि यज्ञ मंडप में आके अपने ब्रह्मचर्य के तेज की ज्वाला से राजा को वचनों से तृप्त कर यज्ञ को रोक दिया और राजा भी ब्रह्मचर्य की महिमा समझ कर अपनी दृढ़ प्रतिज्ञा को छोड़ यज्ञ समाप्त कर दिया यह महाभारत में है। अनन्तर भी प्रकाशमान ब्रह्मचारी होते आये हैं कुछ दिनों से यह क्रम टूट गया है तभी से प्रायः रोग की वृद्धि, संतान की हानि, बुद्धि में मलीनता हो गई है जिससे समझाने तथा कहने पर भी बोध नहीं होता। इससे हे भाइयो बुद्धि की मलीनता को त्यागकर यह अमृतरूप ब्रह्मचर्य का पालन सब प्रकार से करो यह सब प्रकार से सुख का मूल है।

मौंजीकाल।

ब्रह्मवर्चस कामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञोबलार्थिनः षष्ठे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे॥
आषोडशाद्ब्राह्मणस्य सावित्रीनातिवर्तते।
आद्वाविंशात्क्षत्रबन्धोराचतुर्विंशतेर्विशः॥
अत ऊर्ध्वंत्रयोप्येते यथा कालमसंस्कृताः।
सावित्री पतितात्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥
नैतैरपूतैर्विधिवदापद्यपिहि कर्हिचित्।
ब्राह्मान्यौनांश्च संबन्धान्नाचरेद्ब्राह्मणैः सह॥
(मनुः।)

अर्थ सहित वेदवेदांग पढ़नेवाले ब्राह्मण का यज्ञोपवीत गर्भ से या जन्म से पांचवें वर्ष में करना चाहिये, बल के चाहनेवाले क्षत्री का छठे में और बहुत खेती आदि की इच्छा-वाले वैश्य का आठवें वर्ष में करना चाहिये। सोलह वर्ष पीछे ब्राह्मणों को, बाइस से क्षत्री को और चौबीस से उपरांत वैश्य को सावित्री (गायत्री) का उपदेश नहीं हो सकता है अर्थात् इतने काल की अवधि है। इसके उपरांत अर्थात् सोलह आदि के उपरांत तीनों गायत्री से पतित अर्थात् उप-नयन हीन और लोकों में निन्दित व्रात्यसंज्ञक होता है। विधि-पूर्वक यदि ये प्रायश्चित्त न करें तो इन अपवित्र व्रात्यों से आपत्काल में भी ब्राह्मण लोग कन्यादान आदि सम्बन्धों को न करें।

अष्टवर्षं ब्राह्मणमुपनयेत्। गर्भाष्टमेवा। एकादश-वर्षं राजन्यम्। द्वादशवर्षंवैश्यम्। (पा० गृह्यसूत्रे)।

गर्भ से या जन्म से आठवें वर्ष ब्राह्मण का यज्ञोपवीत, ग्यारहवें में क्षत्री का और बारह वर्ष में वैश्य का करना चाहिये।

अथ काम्यानि सप्तमे ब्रह्मवर्चसकामम्। अष्टमे आयु-ष्कामम्। नवमे तेजस्कामम्। दशमेऽन्नाद्यकामम्। एकादशे इन्द्रियकामम्। द्वादशे पशुकाममुपनयेत्।

(आपस्तम्बः)।

अब इष्टक्रम से संवत्सरादि को कहते हैं, ब्रह्मतेज की कामना करनेवाले का सातवें वर्ष में, आयु की वृद्धि चाहने-वाले का आठवें में, तेज चाहनेवाले का नवें वर्ष में, दशवें वर्ष में अन्नादि की कामनावाले का, ग्यारहवें वर्ष में (इन्द्रिय)

अर्थात् चक्षु श्रोत्रादि के विशेष तेज को चाहनेवाले का, बारहवें में पशु चाहनेवाले का उपनयन संस्कार करना चाहिये।

गर्भाष्टमेऽष्टमेवाब्दे पञ्चमे सप्तमेऽपि वा।

बहुवचनं गर्भषष्ट सप्तमयोः प्राप्त्यर्थ मिति सुदर्शनभाष्ये।

(आश्वलायनः)।

षष्ठे तु धनकामस्य विद्याकामस्य पञ्चमे।

अष्टमे सर्वकामस्य नवमे कान्तिमिच्छताम्॥

द्वादशाब्दे व्यतिक्रान्ते प्रायश्चित्तार्हको द्विजः।

(विष्णुः)।

बारह वर्ष के उपरान्त द्विज प्रायश्चित्त के योग्य हो जाता है।

विप्राणां व्रतबन्धनं निगदितं गर्भाज्जनेर्वाष्टमे।

वर्षे वाप्यथ पंचमे क्षितिभुजां षष्ठेतथैका दशे॥

वैश्यानां पुनरष्टमेऽप्यथ पुनः स्याद्द्वादशे वत्सरे।

कालेथद्विगुणे गते निगदिते गौडंतदाहुर्बुधाः॥

(मु० चि०)।

ब्राह्मण को व्रतबंध गर्भ या जन्म से पांचवें या आठवें में, क्षत्री का छठे या ग्यारवें में, और वैश्य का आठवें या बारहवें वर्ष में करना चाहिये। इसके उपरान्त दूने में गौणकाल होता है।

उपनीतो गुरुकुले वसेन्नित्यं समाहितः।

बिभृयाद्दण्ड कौपीनोपवीता जिनमेखलाः॥

उपनीत ब्रह्मचारी सावधान होकर गुरु के कुल में विद्याभ्यास के लिए निवास करें और जातिक्रमानुसार दण्ड

कौपीन यज्ञोपवीत मृगचर्म और मेखलादि को भी धारण करे।

ब्रह्मचारी के भेद।

ब्रह्मचारी चार प्रकार के होते हैं (१) गायत्र (गायत्री) (२) ब्राह्म (उपकुर्वाणक) (३) प्राजापत्य (४) बृहंत (नैष्ठिक) इसमें प्रधान दो हैं उपकुर्वाणक और नैष्ठिक। अब इन चारों का लक्षण कहा जाता है।

अक्षार लवणाशीस्यात् गायत्र्यभ्यास तत्परः।
वर्तते भिक्षयानित्यं गायत्रोऽयंप्रकीर्त्तितः॥

क्षारी लवण का न खानेवाला, गायत्री के जपने में प्रीति, भिक्षा से निर्वाह करनेवाला उसको गायत्र ब्रह्मचारी कहा है।

तथाच-यउपनयनादूर्ध्वं त्रिरात्रमक्षार लवणाशी गायत्रीमधीते स गायत्री ब्रह्मचारी॥

ऋतुकालाभिगामीसन् परस्त्री परिवर्जकः।
वेदानधीते भिक्षाभुक् प्राजापत्योऽयमुच्यते॥

विवाहिता अपनी स्त्री से ऋतुकाल में ही भोग करनेवाला, दूसरे की स्त्री का त्यागी, भिक्षा से निर्वाह करता हुआ वेदपाठी को प्राजापत्य ब्रह्मचारी कहते हैं।

तथाच-स्वदारनिरत ऋतुकालाभिगामी सदा परदारवर्ज प्राजापत्यः॥

द्विविधोब्रह्मचारीतु स्मृतः शास्त्रे मनीषिभिः।
उपकुर्वाणकस्त्वाद्यो द्वितीयो नैष्ठिकः स्मृतः॥

(दक्षः)।

पंडितों ने शास्त्र में उपकुर्वाणक और नैष्ठिक ऐसे दो प्रकार के ब्रह्मचारी कहे हैं ।

योऽधीत्य विधिवद्वेदान् गृहस्थाश्रम माव्रजेत् ।
उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥
(गरुड़ पुराणे) ।

जो ब्रह्मचारी विधिपूर्वक वेदवेदांगों को पढ़कर गृहस्थाश्रमी होता है उसको उपकुर्वाणक और जो मरण समय तक ब्रह्मचर्य में रहे उसको नैष्ठिक कहा है ।

अमावास्यामष्टमीं पौर्णमासीं चतुर्दशीम् ।
ब्रह्मचारी भवेन्नित्य मप्यृतौ स्नातको द्विजः ॥
(मनुः) ।

अमावास्या अष्टमी पौर्णमासी और चतुर्दशी को त्यागकर ऋतुकाल में स्त्री के पास यदि जाया करे तौभी ब्रह्मचारी कहलाता है ।

षोडशर्तुनिशास्त्रीणां तस्मिन् युग्मासु संविसेत् ।
ब्रह्मचर्यैव पर्वस्या द्याश्चतस्त्रश्चवर्जयेत् । (याज्ञवल्क्य)

स्त्रियों की ऋतु रजोदर्शन से १६ रात्रि तक होती है तिसमें समरात्रियों में अर्थात् (२-४-६-८) इत्यादि में गमन करै और आदि की चार रात्रि को त्याग दे वह भी ब्रह्मचारी ही कहलाता है ।

उपकुर्वाणको यस्तु द्विजः षड्विंशवार्षिकः ।
केशान्त कर्मणातत्र यथोक्त चरितव्रतः ॥ (व्यासः) ।

जो छब्बीस (२६) वर्ष का द्विज केशांत (जब से ब्रह्मचर्य धारण किया हो तब से पूरे होने तक) कर्म तक शास्त्र में

कहे हुए के अनुसार जिसने व्रत किये हैं उसको उपकुर्वाणुक कहते हैं । तथाच—

चतुर्धा द्वादशाब्दानि योऽधीयानश्चतुः श्रुतीः ।
भित्तया ब्रह्मचर्येण तिष्ठेद्ब्राह्मः स उच्यते ॥

चारों वेद को बारह वर्ष में चार प्रकार से अर्थात् ऋग् को ऋग् के क्रम से, यजुष को यजुष के क्रम से, सामादि को सामादि क्रम से भिक्षा मांग के भोजन करता हुआ जो पढ़ता है उसको ब्राह्म (उपकुर्वाणुक) ब्रह्मचारी कहते हैं ।

प्रतिवेदं ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ।
(याज्ञवल्क्यः) ।

हर एक वेदों के पढ़ने में बारह ,वर्ष या पांच वर्ष अर्थात् चारों वेद को अड़तालीस ४८ वर्ष या २० वर्ष,तक *ब्रह्मचर्य करना चाहिये (पारस्करगृह्ये) द्वादश द्वादश वा प्रतिवेदम् यावद्ग्रहणं वा द्वादश केऽप्येके । प्रति वेदों को बारह २ वर्ष पढ़े या जब तक इच्छा हो । कोई बारह वर्ष तक कहते हैं ।

वेदाङ्गानि च वेदांश्च धर्म्मशास्त्राणि च द्विजः ।
अधीत्य गुरवेदत्वाद्दक्षिणां स भवेद्गृही ॥
(वृहन्नारदीये) ।

वेद, वेदांग (व्याकरण शिक्षा, ज्योतिषादि) और धर्मशास्त्र को द्विजाती ब्रह्मचारी पढ़कर गुरु को दक्षिणा देकर पश्चात् गृहस्थाश्रमी हो ।

---

* ना० परिव्राज० गुरु समीपे स्वशाखाध्ययन पूर्वकं सर्वविद्याभ्यासंकृत्वा द्वादश वर्ष शुश्रुषा पूर्वकं ब्रह्मचर्यं ।

नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्य्यसन्निधौ ।
तदभावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥
अनेन विधिना देहं साधयन् विजितेन्द्रियः ।
ब्रह्मलोकमवाप्नोति नचेह जायते पुनः ॥
(याज्ञवल्क्य)।

नैष्ठिक ब्रह्मचारी आचार्य के पास रहे, आचार्य न हो तो उसके पुत्र के पास, वह न हो तो आचार्य के स्त्री के पास अथवा अग्निहोत्र की अग्नि के निकट रहे। इस विधि से देह को साधन कर जितेन्द्रिय होके रहता हुआ ब्रह्मलोक को प्राप्त होता है फिर इस संसार में जन्म नहीं पाता है।

अथवा ब्रह्मचारी गुरु के समीप दंड मेखलादि को त्याग कर वा सहित वनवासी हो। यथा—

* ब्रह्मचर्यरतो नित्यं वनवासरतो भवेत् ।
सोऽन्न शास्त्रेषु निरतो ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ॥
(कूर्म पुराणे)।

---

* ब्रह्मचारी मितग्रासी ग्रामात्स्वन्नं समाहरेत् ।
अध्यात्ममतिरासीत निरपेक्षो निराशिषः ॥
आत्मनैव सहायेन सुखार्थी विचरेदिह ।
नाभिनन्देत मरणं नाभि नन्देत जीवितम् ।
कालमेव प्रतीक्षेत निर्देशस्भृतको यथा । (कूर्मे)।
आरूढो नैष्ठिकं धर्मं यस्तु प्रच्यवते पुनः ।
प्रायश्चित्तं न पश्यामि येन शुध्येत्स आत्महा ॥
(स्मृति।)

ब्रह्मचारी इन्द्रियों को जीत कर उपनिषद् और वेदान्त शास्त्र का विचार करता हुआ ब्रह्मचर्य को खंडित न करके जंगल में वास करे। "नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः" नैष्ठिक ब्रह्मचारी ब्रह्मज्ञान में आरूढ़ हो।

त्रयः स्नातकाभवन्ति। विद्या स्नातको व्रतस्नातको विद्याव्रतस्नातक इति ॥

स्नातक तीन प्रकार के होते हैं एक विद्या स्नातक जो वेदों को तीक्ष्ण बुद्धि से शीघ्र समाप्त कर समावर्तन करे। दूसरा व्रतस्नातक जो केवल ब्रह्मचर्य व्रत को समाप्त कर समावर्तन करे और वेद को न पढ़े और तीसरा विद्या व्रतस्नातक जो वेद और ब्रह्मचर्य दोनों को पूरा कर समावर्तन करे।

ब्रह्मचारी के वस्त्र का निर्णय।

वासांसिशाण क्षौमचीर कुतपः। सर्वेषांकार्पासं वा-ऽविकृतं काषायमप्येके ॥

गौतमः प्र० अध्याय।

शण (टसरी) अलसी और कुश वा ऊनी इनके वस्त्र अथवा किसी का मत ऐसा है कि तीनों वर्णों को कपास के नये वस्त्र और गेरू में रंगे वस्त्र धारण करे।

तथा वासांसि वक्ष्यामि विप्रादीनां यथा क्रमात्।
काषायं चैव माञ्जिष्ठं हारिद्रञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥

(वृहन्नारदीये)।

ब्राह्मणादि वर्णों का क्रम से वस्त्र का निर्णय कहता हूं कि ब्राह्मण को गेरू से रंगे वस्त्र (भगवा) क्षत्री को मजीठ (लाल

रंग की मट्टी) से रंगा हुआ और वैश्य को हरदी से रंगा हुआ पहिरना चाहिये ।

उपवीतद्वयं दिव्यं वस्त्रालंकरणानिच ।
गृहाण पादुका छत्रं गंधमाल्यानुलेपनम् ।
ततः काषायवसनं कृष्णाजिन समन्वितम् ॥
यज्ञसूत्रं मेखलांच दण्डं भिक्षाकरंडकम् ।
आचारादर्जितां भिक्षां समर्प्य गुरवे शिवाम् ॥
(महानिर्वाणतन्त्रे) ।

गुरु का कथन है कि हे वत्स इस समय दो यज्ञोपवीत, सुन्दर वस्त्र, आभूषण (गहना) खड़ाऊं, छाता, चन्दन, माला, अनुलेपन (शरीर में लगाने की सुगन्धित वस्तु अर्गजा) और फिर गेरुआ वस्त्र (भगवा) काले हरिण का चर्म, जनेऊ, मेखला, दंड और भिक्षा मांगने का पात्र ग्रहण करो और हे पार्वती जी ! वह ब्रह्मचारी शुद्धता से मिली हुई भिक्षा को गुरु को अर्पण करे ।

*अन्यथा यत्कृतं वासः कार्पासं वा कषायकम् ।
तदेव परिधानीयं शुक्ल मच्छिद्रमुत्तमम् ।
उत्तरीयं समाख्यातं वासः कृष्णाजिनं शुभम् ।
(उशन संहितायां तथाच कूर्म पुराणे) ।

---

*वासांसि शाण क्षौमाविकानि ब्राह्मण क्षत्रिय विशां ।
(हरिहर भाष्ये) ।

ब्राह्मण को सन का वस्त्र (टशरी) क्षत्री को अलसी का, वैश्य को ऊनी वस्त्र कहा है ।

यदि ब्रह्मचारी वस्त्र धारण करे तो सूती गेरू से रंगा हुआ अथवा सफेद ही हो परन्तु छेदरहित सुन्दर वस्त्र हो और डुपट्टा काले मृग का चर्म शुभ कहा है।

काषायं ब्राह्मणे माञ्जिष्ठं क्षत्रियां हारिद्रं वैश्यः ।
(आश्वलायन गृह्य सू० १ । १६ । ६ ।)

गेरुआ से रंगा वस्त्र ब्राह्मण को, मांजिष्ठ (रक्तलाल) क्षत्री को और हरदी रंगा वस्त्र वैश्य को धारण करना चाहिये।

गुरोः प्रियहिते युक्तस्सत्यधर्मे परः शुचिः ।
गुरुणा समनुज्ञातो भुञ्जीदन्नमकुत्सयन् ॥
हविष्य भैक्ष्य भुक्त्वापि स्थानासन विहारवान् ।
द्विकालमग्नि जुह्वानः शुचिर्भूत्वा समाहितः ॥
धारयेतसदादण्डं वैल्वं पालाश मेव वा ।
क्षौमं कार्पासिकं वापि मृगाजिन मथापि वा ॥
सर्वंकाषाय रक्तं वा वासोवापि द्विजस्य ह ।
मेखला च भवेन्मौञ्जी जटानित्योदकस्तथा ॥
यज्ञोपवीती स्वाध्यायो अलब्धो नियतव्रतः ।
पूताभिश्च तथाचाद्भिः सदादैवततर्पणम् ।
भावेन नियतं कुर्वन् ब्रह्मचारी प्रशस्यते ॥

(महाभारत अश्वमेध पर्व पंचचत्वारिंशेऽध्याये ।)

गुरु के प्रिय कार्यों का साधक, सत्य बोलनेवाला, आचारवान, गुरु की आज्ञा से आदर से अन्न खानेवाला, हविष्य

भोजी, गुरु के स्थान पर रहनेवाला, सावधान पवित्रता से दोनों काल अग्नि में हवन करनेवाला, विल्व तथा पलाश दंड का सदैव धारण करनेवाला, अलसी का वस्त्र या सूती वस्त्र या मृगचर्म इनको गेरू से रंगा या लाल रंग से रंगा हुआ वस्त्र द्विज धारण करे, मूँज की मेखला जटाधारी यज्ञोपवीत को पहिने हुए, नियमित व्रत में स्थित अध्ययन करे। पवित्र जलों से सदैव देवताओं का तर्पण करे, ब्रह्मचारी सर्व कर्मों को भावना से करे यही कहा है।

क्षौर निर्णय।

मासे मासे गृहस्थानां पक्षे पक्षे च ऋत्विजां।
ऋतौ ऋतौ यतीनां न नियमो ब्रह्मचारिणाम् ॥

महीने महीने में गृहस्थ को बाल बनवाना चाहिये, अग्निहोत्री को पन्द्रहवें २ दिन, सन्यासी को दो २ महीने पर और ब्रह्मचारी चाहे जब क्षौर करावे नियम नहीं है। क्योंकि ब्रह्मचारी कर्मों को करता हुआ अनुष्ठान में रहता है इससे जभी अनुष्ठान की पूर्ति होवे तभी बनवा लेवे इसीसे नियम नहीं किया। विष्णु संहितायां—"मुण्डेन जटिले न वा भाव्यम्" ब्रह्मचारी बाल बनवाये हुए रहे चाहे जटाधारी रहे।

मुण्डो वा जटिलो वास्यादथवास्याच्छिखाजटः।

(मनु०।)

सब शिर, डाढ़ी, मूँछ मुन्डे हों, वा जटाधारी हो अथवा जिसकी शिखा ही जटा हो गई हो।

ब्रह्मचारी के भोजनादि का नियम ।

*सूतकान्नं नवश्राद्धं मासिकान्नं तथैव च ।
ब्रह्मचारी तु योऽश्नीयात् त्रिरात्रेणैव शुध्यति ॥
(संवर्त संहिता ।)

सूतक का अन्न, मरण के दिन से ग्यारहवें दिन का भोजन और महीने महीने में जो मरे हुए के निमित्त देते हैं उस अन्न को जो ब्रह्मचारी भोजन कर ले तो तीन रात्रि दिन निराजल रहने से शुद्ध होता है। तथाच—पित्र्यादिव्यतिरेकेण ब्रह्मचारिणः प्रेत कर्मकरणे पुनरुपनयनमित्युक्तम् ।

ब्रह्मचारीतु योऽश्नीयान्मधुमासं कथं च न ।
प्राजापत्यंतु कृत्वासौ मौञ्जी होमेन शुध्यति ।
निर्वपेच्च पुरोडाशं ब्रह्मचारी च पर्व्वणि ॥
मन्त्रैः शाकल्य होमान्तेऽग्ना वाज्यञ्च होमयेत् ।

जो ब्रह्मचारी कदाचित् मद्य और मांस को खाले तो प्रजापति कृच्छ्रव्रत को करके मौञ्जी होम (जो यज्ञोपवीत में

---

*भुक्त्वाचैव नव श्राद्धे मृतके सूतके तथा ।
चान्द्रायणेन शुध्येत ब्राह्मणः सुसमाहितः ॥ (कूर्मपुराणे ।)
लशुनंगृंजनं जग्ध्वा पलाण्डुञ्च तथाशुनम् ।
उष्ट्रमानुषके भाश्वरासभीक्षीरभोजनात् ।
उपनयनं पुनः कुर्या त्तप्तकृच्छ्रं चरेन्मुहुः ॥ (शातातपः ।)
अज्ञानात्प्राश्यविण्मूत्रं सुरासंसृष्ट मेव च ।
पुनः संस्कारमर्हन्ति त्रयोवर्णा द्विजातयः ॥ (मनुः)

होता है) करने से शुद्ध होता है और पर्व के दिन ब्रह्मचारी पुरोडाश (देवभाग) दे और शाकल होम के मन्त्रों से घृत का हवन करे। तथाच—सन्ध्याऽग्नि कार्य लोपेस्नात्वाऽष्ट सहस्रं गायत्रीं जपेत्। संध्या और अग्निकार्य के लोप होने से प्राय-श्चित्त के लिये आठ हजार गायत्री जपै।

भिक्षाटनमटित्वातु स्वरपोल्लोकान्नमश्नुते।
अस्नात्वाचैव यो भुंक्ते गायत्र्यष्ट शतं जपेत्॥
शूद्र हस्तेन योऽश्नीयात्पानीयं वा पिबेत्क्वचित्।
अहोरात्रोषितोभूत्वा पंचगव्येन शुध्यति॥
शुष्क पर्युषितोच्छिष्टं भुक्त्वान्नं केश दूषितम्।
अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति॥

अच्छे शरीर में जो भीख मांगकर एक का अन्न खाता है वा बिना स्नान किये जो खाता है वह आठ सौ ८०० गायत्री जपे। जो शूद्र के हाथ से मंगाया हुआ भोजन अथवा पानी पीता है वह अहोरात्र उपवास करके पंचगव्य से शुद्ध होता है। सूखा हुआ लिद्धान्न तथा बासी तथा झूठा और जिसमें केश पड़े हों ऐसे अन्न को खाकर अहोरात्र व्रत कर पंचगव्य से शुद्ध होता है अर्थात् पंचगव्य मंत्रों से पान कर व्रत करे।

अयाज्य याजं कृत्वा भुक्त्वाचान्नं विगर्हितम्।
गायत्र्यष्ट सहस्रन्तु जपं कृत्वा विशुध्यति॥

यज्ञ कराने के अयोग्य पुरुष को यज्ञ कराकर और निन्दित अन्न को खाकर ब्रह्मचारी आठ हज़ार गायत्री जपै तब शुद्ध होता है।

ब्रह्मचारी निराहारः सर्वभूतहितेरतः ।

गायत्र्या लक्षजप्येन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥

भोजन को त्यागकर ब्रह्मचारी सबके कल्याण में तत्पर हुआ गायत्री के लाख जप करने से सब पापों से छूटता है।

भैक्षेण वर्तयेन्नित्यं कामनाशी भवेद्व्रती ।

भैक्षेण व्रतिनोवृत्ति रुपवास समास्मृता ॥

नित्य भिक्षा मांगकर निर्वाह करना, अमुक से अन्नादि मिला करे ऐसी इच्छा न करे और न उद्योग करे, भिक्षा मांग के भोजन करना यही है जीविका जिसकी, इस प्रकार से रहनेवाले को उपवास के समान फल कहा है—तथाच—

ब्रह्मचर्य्येस्थितोनैक मन्नमद्यादनापदि ।

ब्राह्मणः काममश्नीयाच्छ्राद्धे व्रतमपीडयन् ॥

(याज्ञवल्क्यः ।)

आपत्काल न हो तो ब्रह्मचारी एक घर से मांग के अन्न न खावे परन्तु ब्राह्मण ब्रह्मचारी श्राद्ध में निमंत्रण चाहे जितना खावे उसका व्रत नहीं बिगड़ता ।

अष्टौग्रासामुनेर्भक्ष्याः षोडशाऽरण्यवासिनः ।

द्वात्रिंशत्तु गृहस्थस्य यथेष्टं ब्रह्मचारिणां ॥ (वशिष्ठः) ।

आठ ग्रास* सन्यासी को खाना, सोलह ग्रास वानप्रस्थ को, बत्तीस ग्रास गृहस्थ को और इच्छाऽनुसार ब्रह्मचारी को

---

* विश्वामित्रः । कुक्कुटांड प्रमाणन्तु ग्रासमानं विधीयते ।
मुर्गे के अण्डा बराबर ग्रास का प्रमाण कहा है अथवा टके भर अथवा मुख में जो समा सके वह ग्रास का प्रमाण है ऐसा पाराशर का मत है

भोजन करना। ब्रह्मचारी के ऊपर कर्मकांड का बोझा विशेष है यदि यथेष्ट भोजन न करे तो अशक्तता से कर्म में हानि पड़े इससे यथेष्ट कहा और यदि योग, ज्ञान मार्ग में आरूढ़ हो तो मिताहार करना चाहिये और भी यथेष्ट भोजन में कहा है।

अनड्वान्ब्रह्मचारी च आहिताऽग्निश्चते त्रयः।
भुञ्जाना एव सिध्यन्ति नैषां सिद्धि रनश्नताम्॥

वृषभ, ब्रह्मचारी और वानप्रस्थ ये तीनों भोजन से ही सिद्धि को प्राप्त होते हैं और न भोजन करने से सिद्धि नहीं है। तथाच-भविष्ये-

गृहस्थो ब्रह्मचारी च योऽनश्नंस्तु तपश्चरेत्।
प्राणाऽग्निहोत्र लोपेन अवकीर्णी भवेत्तु सः॥

गृहस्थ और ब्रह्मचारी जो विना भोजन किये तप करते हैं उनको पंच प्राणाहुती के लोप होने से अवकीर्णी दोष लगता है।

*मंडलं पूर्वतः कृत्वा तत्रस्थाप्याथ भोजयेत्।
स्वप्राणाहूति पर्य्यन्तं मौनमेवं विधीयते॥

प्रथम चतुःकोण प्रादेशमात्र (वीता) कामंडल जल से बनाकर उसके ऊपर पात्र सहित भोजन सामग्री रखकर

---

* आदित्यवसवोरुद्रा ब्रह्माचैव पितामहः। मंडलेतूप जीवन्ति तस्मात्कुर्वीत मंडलम्। द्वादशांगुल मानंतु व्रतिनां योगिनां सदा। चतुरंगुलं विधातव्यं त्रिकोणं प्रेतकर्मणि॥
(शंखः।)

भोजन करे और जहां तक भोजन करे वहां तक न बोले। छत्री त्रिकोणमंडल बनाये ।

दिवा स्वपिति यः स्वस्थो ब्रह्मचारी कथञ्चन ।
स्नात्वासूर्यं समभ्यर्च्य गायत्र्यष्ट शतंजपेत् ॥ (संवर्त्तः ।)

जो ब्रह्मचारी अच्छे शरीर में दिन में कदाचित् सोवे तो स्नान करके सूर्य का पूजन करे वा दर्शन करके आठ सौ ८०० गायत्री जपे ।

* सूतके कर्मविचार ।

नत्यजेत्सूतकेकर्म ब्रह्मचारी स्वकं क्वचित् ।
न दीक्षायाः परं यज्ञे न कृच्छ्रादि तपश्चरन् ।
पितर्य्यपि मृतेनैषां दोषो भवति कर्हिचित् ।
अशौचं कर्मणोऽन्तेस्यात् त्र्यहं वा ब्रह्मचारिणः ।
(कात्यायनः) ।

सूतक में ब्रह्मचारी अपने कर्म को कभी भी न छोड़े और संकल्प करने के पश्चात् यज्ञ में (अनुष्ठानादि) और कृच्छ्र-चंद्रायणादि तप करता हुआ भी न छोड़े। पिता के मरे पर भी इनको दोष कभी नहीं होता अथवा ब्रह्मचारी को प्रारम्भ किये कर्म के पीछे तीन दिन अशौच होता है। (तथाच मनुः ५ अ०) ।

---

* ब्रह्मचारी गृहे येषां हूयते च हुताशनः । संपर्कं चेन्न कुर्वन्ति नतेषां सूतकं भवेत् ॥ (पाराशरः ।)

जिनके घर ब्रह्मचारी अग्नि में हवन करता है उनके घर पैदा हुये अशौच का यदि सम्बन्ध करें तो उसे अशौच नहीं लगता है ।

आचार्यं स्वमुपाध्यायं पितरं मातरं गुरुम् ।
निर्हृत्यतु व्रतीप्रेतान्नव्रतेन वियुज्यते ॥

*आचार्य कहिये जो यज्ञोपवीत कराके यज्ञादि के संपूर्ण शाखाओं को पढ़ावे । †उपाध्याय जो वेद का एक देश वा व्याकरणादि अंगों को पढ़ावे और गुरु‡ जो एक वेद का अथवा सब वेदों के एक देश का व्याख्यान करे और माता तथा पिता इन सबों की दाह आदि प्रेत कर्म करने से ब्रह्मचारी के व्रत का लोप नहीं होता ।

सब्रह्मचारिण्येकाह मतीतेक्षपणं स्मृतम् ।
जन्मन्येकोदकानां तु त्रिरात्राच्छुद्धि रिष्यते ॥

साथ पढ़नेवाले (सपाठी) के मरने में ब्रह्मचारी को एक दिन का अशौच होता है और समानोदकों के पुत्र जन्म होने पर तीन रात्रि में शुद्धि होती है ।

ब्रह्मचारिधर्म ।

उपनयनादि नियमः उक्तं ब्रह्मचर्यं अग्नींधन भैक्ष्य चरणे सत्यवचनं अपामुपस्पर्शनं एके गोदानादि बहिः

---

*उपनीयतु यः शिष्यं वेदमध्यापये द्विजः । सकल्पं सरहस्यं च तमाचार्यं प्रचक्षते ॥

† एकदेशंतु वेदस्य वेदाङ्गान्यपि वा पुनः । योऽध्यापयति वृत्यर्थं उपाध्यायः स उच्यते ॥

‡ निषेकादीनि कर्माणि यः करोति यथाविधि । संभावयति चान्नेन स विप्रो गुरुरुच्यते । (मनुः ।)

सन्ध्यार्थं तिष्ठेत्पूर्वमासीतोत्तरां सज्ज्योतिष्यज्योतिषो-दर्शनाद्वाग्यतः न आदित्यमीक्षये तवर्ज्जयेन्मधुमांस गन्ध माल्यादि वा स्वप्नांजनाभ्यञ्जनयानोपानच्छत्र कामक्रोध लोभ मोह वाद्यवादन स्नान दन्तधावन हर्ष नृत्तगीत परिवाद भयानि * ॥ (गौतमः ।)

यज्ञोपवीत के धारण से यह नियम है कि जो ब्रह्मचर्य व्रत कहा है वह करे। अग्नि की रक्षा, जलों से आचमन करना, कोई इन नियमों को सोलह वर्ष के मुंडन से कहते हैं, संध्या† तारेगणों के दीखते हुए करे, सायंकाल की तारा-गणों के उदय होने पर मौन होकर करे (परन्तु अन्यत्र का प्रमाण सायंकाल के विषय में तारा के उदय होने पर समाप्त

---

* कैतवं वित्तशाठ्यं च पैशुन्यं वर्जयेत्सदा । अति-हासमवष्टम्भं लीलास्वेच्छाप्रवर्त्तनम् ॥ वर्ज्जयेत्सर्वं यत्नेन गुरुणामपिसन्निधौ । तद्वाक्य प्रतिकूलं च अयुक्तं वै गुरोर्वचः ॥ न वदेत्सर्वयत्नेन अनिष्टं न स्मरेत्सदा । यतीनामासनं वस्त्रं दण्डाद्यं पादुके तथा ॥ माल्यं च शयन स्थानं पात्रं छायाश्च यत्नतः । यज्ञोपकरणाङ्गं च न स्पृशे-द्वैपदेन च ॥ (लिङ्ग पुराण ।)

† उदयास्तमयादूर्ध्वं यावत्स्याद्घटिकात्रयं । ताव-त्संध्यामुपासीत प्रायश्चित्तमतः परम् ॥ (कात्यायनः ।) तिष्ठेदुदयनात्पूर्वां मध्यमामपि शक्तितः । आसीन उद्-गमाच्चान्त्यां संध्यां पूर्वत्रिकं जपन् । (उशनः ।)

करे) सूर्य को न देखे, मदिरा, मांस, गंध, पुष्प की माला आदि का धारण, दिन में सोना, अंजन, उपटन, सवारी, जूता छाता, काम, क्रोध, लोभ, मोह, बाजा बजना, अति स्नान, दतोन, खुशी मनाना, नाचना, गाना, निन्दा और भय इन सब को वर्ज दे अर्थात् न करे।

*मेखलाऽजिनं† दण्डाऽक्ष‡ ब्रह्मसूत्र॥ कमण्डलन्। जटिलोधौतवाश्चाश्चा रक्तपीठः कुशान्दधत्॥
स्नान भोजन होमेषु जपोच्चारे च वाग्यतः। नच्छिन्द्यान्नखरोमाणि कक्षोपस्थगतान्यपि॥

(श्रीमद्भागवते।)

---

* मौञ्जी त्रिवृतसमाश्लक्ष्णा कार्य्या विप्रस्य मेखला। मुञ्जाभावे कुशानाहुर्ग्रन्थिनैकेन वा त्रिभिः॥ (उशनः।)

† अखंडं वा त्रिखंडं वा ह्या चत्वारिंशदंगुलम्। चतुरंगुल विस्तीर्णं धारयेदजिनंसदा॥ (संस्कार रत्न मालायाम्।)

चतुर्विंशांगुल एकः। अष्टांगुलो द्वितीयः। षोडशांगुलस्तृतीयः। (खंडत्रयमानम्।)

‡ ब्राह्मणोवैल्व पालाशौ क्षत्रियोवटखादिरौ। पैलवौदुम्बरौ वैश्यो दण्डानर्हन्ति धर्मतः॥ (मनुः।)

धारयेद्वैल्वपालाशौ दण्डौकेशान्तगौद्विजः। यज्ञारण्यवृक्ष जंवाथ सौम्यं वृषणमेव च॥ (उशनः।)

‖ कार्पासो निर्मलः प्रोक्तः शुचित्व समुद्भवः। तच्चात्रे सूत्रनिष्कासं संहतांगुलिमूलके। आवेष्ट्यषण्णव-

वह ब्रह्मचारी मेखला, काले मृग का चर्म, दंड, रुद्राक्ष की माला, यज्ञोपवीत, कमंडलु धारण करे, जटाधारी रहे, स्वच्छ वस्त्र, आसन लाल रंगादि से रंगा न हो, कुशा रक्खे, स्नान के समय, भोजनकाल में, होम के समय में, जप करते हुए मौन रहे, नख न कटावे और बगल तथा उपस्थ (लिंग इन्द्रिय के समीप का बाल) के बालों को न बनावे।

ब्रह्मचारी गुरुकुले वसन्दान्तो गुरोर्हितम्।
आचरन्दासवन्नीचो गुरौ सुदृढसौहृदः॥
सायंप्रातरुपासीत गुर्वग्न्यर्क सुरोत्तमान्।
उभेसन्ध्येच यतवाग् जपन्ब्रह्म समाहितः॥
छन्दांस्यधीयीत गुरो राहूतश्चेत्सुयंत्रितः।
उपक्रमेऽवसानेच चरणौ शिरसानमेत्॥

ब्रह्मचारी इन्द्रियों को जीत कर गुरु के हित का कार्य करता हुआ गुरु के घर में वास करे, और टहलू (दास) की तरह सब काम करता हुआ गुरु में अत्यन्त दृढ़ भक्ति राखे। सायंकाल प्रातःकाल के समय गुरु, अग्नि, सूर्य और इन्द्र, वरुणादि श्रेष्ठ देवताओं का पूजन तथा स्मरण करे, दोनों काल की संध्या तथा गायत्री का जप सावधानी से मौन हो कर करे, जब गुरु बुलावें तब सावधानी के साथ उनसे वेद का अध्ययन करे और अध्ययन के आदि अन्त में गुरु के चरणों

त्यातत्त्रिगुणी कृत्ययत्नतः॥ अधिप्रदक्षिणा वृत्तं समंस्या-ऋवसूत्रकम्। तत्त्रिःप्रदक्षिणी कृत्य ब्रह्मग्रंथिः प्रदीयते॥

(रत्नमालायां देवलः।)

को मस्तक से नमस्कार करे अर्थात् शिर उनके चरण पर रख दे । अर्थात् भाव से प्रणाम करे ।

सायं प्रातश्चरेद्भैक्षं गुरवे तन्निवेदयेत् ।
भुञ्जीत यद्यनुज्ञातो नो चेदुपवसेत्क्वचित् ॥
सुशीलोमितभुग्दक्षः श्रद्दधानो जितेन्द्रियः ।
यावदर्थं व्यवहरेत्स्त्रीषु स्त्रीनिर्जितेषु च ॥

प्रातः सायं दोनों काल "भवति भिक्षां देहि" कहके भिक्षा* मांगे और वह भिक्षा† ले आके गुरु के समीप रख दे, वह आज्ञा दें, तो भोजन करे यदि कदाचित आज्ञा न दें तो उस दिन उपवास करे । परन्तु मन में खेद न करे । इससे यह लाभ है कि चित्त से विद्या को पढ़ेगा और इन्द्रियों का दमन करेगा ।

"गुरुकुलेन भिक्षेत"

त्रिस्त्रोऽप्रत्याख्यायिन्यः षड् द्वादश परिमिता वा मातरं प्रथमामेके" (गृह्यसूत्रे ।)

सुशीला स्त्रियों से तीन या छः या बारह अथवा जहां तक भोजन प्रमाण न मिले उतने घरों तक भिक्षा मांगे कोई कहते हैं प्रथम माता से भिक्षा मांगे शीलवान, मिताहारी श्रद्धायुक्त

---

* कार्य्योभिक्षा सदाधार्यं कौपीनं कटिसूत्रकम् । कौपीनमहतं धार्यं दण्डं वा वस्त्र पार्श्वयुक् ॥ यज्ञोपवीत मजिनं मौञ्जीं दण्डं च धारयेत् ।

† अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियस्य पयः स्मृतं । वैश्यस्याप्यन्नमेवान्नं शूद्रस्य रुधिरंस्मृतम् ॥ (आपस्तम्बः ।)

जितेन्द्रिय होकर, स्त्री और स्त्रियों के वशीभूत पुरुषों के साथ अपना व्यवहार प्रयोजन मात्र रक्खे क्योंकि

वर्जयेत्प्रमदागाथा मगृहस्थो बृहद्व्रतः ।
इन्द्रियाणि प्रमाथीनि हरन्ति प्रसभंमनः ॥

जो गृहस्थ नहीं है ऐसा चिरकाली ब्रह्मचर्यव्रत धारण करनेवाला पुरुष स्त्रियों* से वार्ता भी न करे क्योंकि इन्द्रियां बड़ी बलवान हैं वह जितेन्द्रिय पुरुषों के चित्त को भी बलात्कार से हर लेती हैं ।

पढ़ने का क्रम ।

ब्रह्मारम्भेऽवसाने च पादौग्राह्यौ गुरोः सदा ।
संहत्य हस्तावध्येयं स हि ब्रह्माञ्जलिः स्मृतः ॥
व्यत्यस्तपाणिना कार्यमुपसंग्रहणं गुरोः ।
सव्येन सव्यः प्रष्टव्यो दक्षिणे न च दक्षिणः ।
ब्रह्मणः प्रणवं कुर्यादादावन्ते च सर्वदा ।
स्त्रवत्यऽनोंकृतं पूर्वं पुरस्ताच्च विशीर्यति ॥

(मनुः) ।

---

* माद्यति प्रमदां दृष्ट्वा सुरांपीत्वा च माद्यति । तस्माद्दृष्टि विषां नारीं दूरतः परिवर्जयेत् । सम्भाषणं सहस्त्रीभि रालापः प्रेक्षणं तथा ॥ नृत्यगानं सहासं च परिवादांश्चवर्जयेत् ॥ (नारद पा० ।)

*वेदाध्ययन के आरम्भ और अन्त में सदा गुरु के चरण ग्रहण करने के योग्य हैं और दोनों हाथों को जोड़कर पढ़ने से ब्रह्माञ्जलि कहते हैं। फेरे हुए सीधे हाथों से गुरु के चरणों का ग्रहण करना चाहिये अर्थात् दाहिने हाथ से गुरु का दाहिना पांव और बायें हाथ से बांयाँ पांव पकड़कर प्रणाम करे॥ वेद पाठ के आरम्भ में और अन्त में ओंकार का उच्चारण करे क्योंकि जिसमें पहिले ओंकार का उच्चारण न हुआ वह धीरे २ नष्ट हो जाता है और जिसमें पीछे उच्चारण न हुआ वह विस्मृत (बिसर) हो जाता है याद नहीं रहता।

हस्तेन वेदं योऽधीते स्वरवर्ण समन्वितम्।
ऋग्यजुः सामभिःपूतो ब्रह्मलोके महीयते।
हस्तहीनंतु योऽधीते स्वरवर्णविवर्जितम्।
ऋग्यजुः सामभिर्दग्धो वियोनिमनुगच्छति॥
(पाणिनिः।)

हाथ से स्वरों का उच्चारण करता हुआ जो ब्रह्मचारी स्वर और वर्ण से युक्त वेद को पढ़ता है वह ऋगादि वेदों से

---

* वेद पढ़ने का क्रम। जटामाला शिखा लेखा ध्वजो दण्डो रथोघनः। अष्टोविकृतयः प्रोक्ताः क्रमपूर्वा महर्षिभिः॥ (याज्ञवल्क्य शिक्षासूत्रे।)

य इमां पृथिवीं सर्वां स्वर्णरूपक शोभिताम्। दद्यात्कलास्तं च शिष्येभ्यस्तच्च तच्च द्वयं समम्। (यमः।)

कुर्यादध्ययनं चैव ब्रह्मचारी यथाविधि। विधिं त्यक्त्वा प्रकुर्वाणो न स्वाध्याय फलं भजेत्॥ (हारीतः।)

पवित्र होकर ब्रह्मलोक में पूजित होता है। हस्त से स्वरों को नहीं दिखाता हुआ स्वर तथा वर्णों से अयुक्त जो पढ़ता है वह ऋणादि से दग्ध होकर नीच कुल में पैदा होता है। (पाणिनि)

स्वरोवर्णोऽक्षरं मात्रा तत्प्रयोगार्थ एवच।
मन्त्र ज्ञानं समासेन वेदितव्यं पदे पदे ॥ (यजुर्वेदभाष्ये।)

स्वर, वर्ण, अक्षर, (अच से विशिष्ट व्यञ्जन को अक्षर कहते हैं और वर्ण पृथक् २ स्वर व्यञ्जन दोनों को कहता है) मात्रा (दीर्घ-प्लुतादि) प्रयोग करने की विधि और मन्त्र का अर्थ इन सब को हर एक पद पर जानना चाहिये।

उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृति पूर्वकम् ।
वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥
वाकोवाक्यं पुराणं च नाराशंसीश्च गाथिकाः ।
इतिहासांस्तथा विद्यां योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥
(याज्ञवल्क्य।)

गुरु शिष्य को यज्ञोपवीत कराकर महाव्याहृति पूर्वक वेद को पढ़ावे और पवित्र आचार की शिक्षा भी देवै जो द्विज वाकोवाक्य पुराण नाराशंसी इन्द्रगाथा यज्ञ गाथा इतिहास और वारुणि आदि विद्या को शक्ति से रोज पढ़ता है।

सहस्रकृत्वस्त्वभ्यस्य बहिरेतत्त्रिकं द्विजः ।
महतोऽप्येनसोमासा त्वचे वाहिर्विमुच्यते ॥
एतयर्चाविसंयुक्तः काले च क्रिययास्वया ।
ब्रह्मक्षत्रिय विड्योनिर्गर्हणां याति साधु षु ॥

संध्याकाल में अर्थात् उक्त समय पर प्रणव ओंकार) तीनों व्याहृति (भूर्भुवस्वः) और गायत्री (तत्सवि०) सहित

ग्राम से बाहर नदी आदि के तट पर हजार जप करने से बड़े पापों से ऐसे छूटता है जैसे कांचली से सांप, इससे पापों के निवृत्यर्थ अवश्य जप करे। कहे हुए समय के ऊपर इस सावित्री ऋचा को और प्रातः|सायंकाल के हवन को जो नहीं करता है वह ब्राह्मण क्षत्री वैश्य अपने २ जाति में निन्दा को प्राप्त होता है इससे काल का परित्याग न करे।

वेदमेव सदाभ्यसेत्तपस्तप्स्यन्द्विजोत्तमः ।
वेदाभ्यासो हि विप्रस्य तपः परमिहोच्यते ॥
आहैवसनखाग्रेभ्यः परमं तप्यते तपः ।
यः स्रग्व्यपि द्विजोऽधीते स्वाध्यायं शक्तितोन्वहम् ॥

तप को करता हुआ ब्राह्मण सदा वेद ही का अभ्यास करे क्योंकि वेद का पढ़ना ही इस लोक में मुनीश्वरों ने परम तप कहा है। जो द्विज ब्रह्मचर्य के नियमों को छोड़ करके भी प्रतिदिन शक्ति के अनुसार वेद को पढ़ता है वह नख शिख तक सर्व देहव्यापी बड़े भारी तप को करता है। अब तो वेद की रुचि लोगों में कम हो गई है इसीसे द्विज दुःखी हैं वेद कल्पवृक्ष है उसको ब्राह्मण सदा धारण करें अर्थात् पढ़ें।

गुरुसेवा-आज्ञा पालन ।

*शरीरं चैव वाचं च बुद्धीन्द्रिय मनांसि च ।
नियम्य प्राञ्जलिस्तिष्ठेद्वीक्षमाणो गुरोर्मुखम् ॥

---

* ब्राह्मणस्य निष्कारणोधर्म्मः सडङ्गोवेदोऽध्येयो ज्ञेयश्च ॥ (पातञ्जलिः।)

हीनान्न वस्त्रवेषः स्यात्सर्वदा गुरुसन्निधौ।
उत्तिष्ठेत्प्रथमंचास्य चरमं चैव संविशेत्॥
प्रतिश्रवण सभाषे शयानो न समाचरेत्।
नासीनो न च भुञ्जानो न तिष्ठन्नपराङ्मुखः॥
आसीनस्य स्थितः कुर्यादभिगच्छंस्तु तिष्ठतः।
प्रत्युद्गम्यत्वाव्रजतः पश्चाद्धावंस्तु धावतः॥ †

शरीर, वचन, बुद्धि, इन्द्रिय, मन इन सब को रोक हाथ जोड़ के गुरु के मुख को देखता हुआ बैठा रहे। गुरु के समीप में सदा गुरु से हीन अन्न वस्त्र खाय पहिरे और सवेरे गुरु से पहिले उठे और संध्या समय गुरु से पीछे सोवै। सोता हुआ, आसन पर बैठा हुआ, भोजन करता हुआ और मुह

ब्राह्मण को बिना लौकिक फल के भी सहित व्याकरणादि ६ अङ्गों के वेद पढ़ना चाहिये और उसका अर्थ समझना चाहिये। अन्यथा पापभागी होता है।

यज्ञानांतपसांचैव शुभानाञ्चैवकर्म्मणाम्। वेदएवद्वि-जातीनां निःश्रेयस्करः परः। (याज्ञवल्क्यः।)

यज्ञ तप और यज्ञोपवीतादि संस्कारों का बोध कराने से वेद ही द्विजों को मोक्ष देनेवाला है।

† ज्येष्ठान्येऽपि च ते सर्वे वन्दनीयाविजानता। आज्ञाभङ्गं न कुर्वीत यदीच्छेत् सिद्धि मुत्तमाम्॥ ऋषय-श्चैव देवाश्च प्रीयन्ते पितृभिः सह। पूज्यमानेषु गुरुषु त्वस्मात्पूज्य तमोगुरुः॥ (लिङ्ग पु०।)

फेरे खड़ा हुआ भी आज्ञा को माने अर्थात् इन समयों में भी यदि गुरु आज्ञा करें तो सुनते ही उठ खड़ा हो आज्ञा के कार्यों को करे किन्तु वार्तालाप न करे। जैसे आसन पर बैठे हुए समय में गुरु आज्ञा दे तो आप उठ खड़ा होके और जो खड़े होके आज्ञा दें तो उनके सन्मुख दो चार कदम चल के और सन्मुख आवें तो सामने जा के और यदि किसी कार्यवश गुरु दौड़ते हुए आज्ञा करें तो आप भी दौड़ कर आज्ञा माने और बातचीत करे।

नीचं शय्यासनं चास्य सर्वदा गुरु सन्निधौ।
गुरोस्तु चक्षुर्विषये न यथेष्टासनो भवेत्॥
दूरस्थो नार्चयेदेनं न क्रुद्धो नान्तिके स्त्रियाः।
यानासनस्थ श्चैवैनमवरुह्याभिवादयेत्॥
गुरोर्यत्र परीवादो निन्दा वापि प्रवर्तते।
कर्णौ तत्र पिधातव्यौ गन्तव्यं वा ततोऽन्यतः॥

गुरु के समीप शिष्य, गुरु के शय्या से नीचे और गुरु के आसन से नीचे आसन लगावे अर्थात् बराबरी न करे और गुरु के देखते हाथ पांव फैला के न बैठे। यदि गुरु दूर पर हों तो दूसरे के हाथ से पूजा न करवावे अर्थात् आपही जाय तथा क्रोध में हो के न करे और यदि गुरु स्त्री के पास बैठे हों तो शिष्य वहां न पूजा करे और सवारी तथा आसन पर बैठा हुआ शिष्य, इनको छोड़ के गुरु को नमस्कार करे। जहां गुरु के दोषों का वर्णन होता हो या झूठे दोष लगाये जाते हों वहां शिष्य बैठा हो तो कान मूंद ले या उठके चल दे क्योंकि गुरु की निन्दा सुनने में बड़ा दोष है।

सत्यकामोहजाबालो जबालां मातरमामन्त्र याञ्चक्रे ब्रह्मचर्यं भवति विवत्स्यामि किंगोत्रोऽहमस्मीति ।

सत्यकाम जावाल अपनी माता जवाला से पूछा कि गुरु के समीप में ब्रह्मचर्य से वास करूंगा हे भवति ! मेरा क्या गोत्र है ।

साहैनमुवाच नाहमेतद्वेद तात यद्गोत्रस्त्वमसि बह्वहं चरन्ती परिचारिणी यौवनेत्वामलभे । साऽहमेतन्न वेदयद्गोत्रस्त्वमसि जबाला तु नाम हमस्मि सत्यकामो नाम त्वमसि स सत्यकाम एव जाबालो ब्रवीथा इति ।

माता जबाला उत्तर देती है कि हे पुत्र ! मैं बहुत ऋषियों की सेवा करती हुई युवा अवस्था में तुमको ही प्रथम उत्पन्न किया है इससे मैं नहीं जानती कि क्या गोत्र है अर्थात् जिस स्थान में मैं रहती थी उस स्थान में ऋषियों का समागम आने जाने का लगा रहता था इस लिए दीनता के कारण उनके सेवा में लगी रहने के कारण मेरे को स्मरण नहीं रहा और प्रथमही तुम्हें उत्पन्न कर तुम्हारे पिता का देहांत हो गया इससे मेरे को स्मरण नहीं कि तुम्हारा क्या गोत्र है । मेरा नाम जबाल और सत्यकाम जाबाल नाम तेरा है इस प्रकार गुरु से कहना ।

सह हारिद्रुमतं गौतम मेत्योवाच ब्रह्मचर्यं भगवति वत्स्याम्युपेयां भगवन्त मिति ।

वह गुरु गौतम के पास जा के कहता है हे भगवन् ! मैं ब्रह्मचर्य से आपके समीप रहूंगा ।

तꣳहोवाच नैतदब्राह्मणो विवक्तुमर्हति समिधꣳ सौम्याहरोपत्वानेष्ये। न सत्यादगा इति तमुपनीय कृशानाम बलानां चतुः शता गा निराकृत्योवाचेमाः सोम्यानुसंव्रजेति ता अभिप्रस्थापयन्नुवाच नासहस्रेणावर्तयेति स ह वर्षगणं प्रोवास ता यदा सहस्रꣳ सम्पेदुः।

गुरु ने पूछा तुम्हारा क्या गोत्र है तब जाबाल ने जैसा माता ने कहा था वैसा ही सत्य २ कह दिया। गुरुदेव! उसकी सत्यता से प्रसन्न हो अर्थात् यह ब्राह्मण ही है। उससे समिध मँगा के ब्रह्मचर्य दिया और ब्रह्मचर्य के अंग संध्या, अग्निहोत्रादि कर्मों को पढ़ा के इस को चार सौ ४०० गऊ दुबली देके कहा कि इनको जंगल में ले जा के चराओ, अर्थात रक्षा करो फिर वह सत्यकाम प्रसन्न चित्त से गुरु की आज्ञा ले वन को चला और प्रतिज्ञा किया कि जब तक हजार न पूरे होंगे, तब तक न आऊंगा। कुछ काल में जब सहस्र पूरे हुए

अथहैन मृषभोऽभ्युवाद सत्यकाम इति। भगव इति हप्रतिशुश्राव प्राप्ताः सौम्यसहस्रꣳस्मः प्रापयनु आचार्य कुलम्॥

अनन्तर उसमें का ऋषभ (बैल) प्रसन्न हो कहा हे सत्य-काम तुम्हारा मनोर्थ पूरा हुआ अब आचार्य (गुरु) के पास चलो।

ब्रह्मणश्चते पदं ब्रवाणीति। ब्रवीतुमें भगवानिति॥

अनंतर वह ऋषभ प्रसन्न हो कहा कि तुम्हारी सेवा से हम सब प्रसन्न हैं अतः तुमको ब्रह्मविद्या का उपदेश करता हूं, ब्रह्म का एक पाद में कहता हूं। एक पाद कहकर अग्नि ने

दूसरे पाद को, हंस ने तीसरे पाद को और पहुंचते २ चौथे पाद को गुरु ने कहा। अभिप्राय यह है कि गुरु के भाव से सेवा करनी चाहिये गुरु से ही सब प्राप्त होता है। जावाल गऊ लेके गुरु के पास पहुंचे गुरु चौथे पाद को कहके आशीर्वाद दिया जिन जावाल के नाम से उपनिषद् हुआ जो अभी तक गाया जाता है इस प्रकार ब्रह्मचर्य और गुरु की महिमा लोगों को इसका लक्ष्य रखना चाहिये।

न स्नानेन न मौनेन नैवाग्नि परिचर्यया।
ब्रह्मचारी दिवं याति संयाति* गुरु पूजनात्॥
(शङ्ख।)

ब्रह्मचारी न स्नान से न मौनव्रत धारण करने से न अग्नि की सेवा करने से स्वर्ग जाता है किन्तु गुरु सेवा ही से स्वर्ग जाता है। इससे गुरु सेवा अवश्य करना चाहिये। गुरुसेवा के बहुत प्रमाण हैं अभिप्राय सब का यही है कि ब्रह्मचारी गुरु की पूर्णतया सेवा करे इसी में उसका मोक्ष है। यहां पर जावाल ऋषि का चरित्र छान्दोग उपनिषद् से देना चाहिये।

---

* भागवते कृष्ण वचनं सुदामानंप्रति। नाहमिज्या-प्रजातिभ्यां तपसोपशमेन च। तुष्येयं सर्वभूतात्मा गुरु शुश्रूषया यथा॥ भवेद्वीर्यवती विद्या गुरुवक्त्रसमुद्भवा। अन्यथा फल हीनास्यान्निर्वीर्याप्यति दुःखदार॥
(शिवसंहिता।)

यथा खनन्खनित्रेण नरोवार्यधिगच्छति। तथा गुरु गतां विद्यां शुश्रूषुरधि गच्छति। (मनुः।)

अभिवादन फल ।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि तस्यवर्धन्ते आयुर्विद्या यशोबलम् ॥
(मनुः ।)

उठ कर सदा वृद्ध को नमस्कार करनेवाले तथा सेवा करनेवाले मनुष्य की आयु, विद्या, यश और बल ये चारों बढ़ते हैं । प्रणाम करने का क्रम यह है कि अपना गोत्र तथा नाम का उच्चारण कर मैं आपको नमस्कार करता हूं ।

प्रयतः कल्पमुत्थाय स्नातो हुतहुताशनः ।
कुर्वीत प्रयतो भूत्वा गुरुणामभिवादनम् ॥
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयित्वा हुताशनम् ।
अभिवाद्य गुरुं पश्चाद् गुरोर्वचन कृद्भवेत् ॥ (शङ्खः ।)

अभिप्राय यह है कि अग्निहोत्र के पश्चात् गुरु प्रभृति सब को प्रणाम करे ।

समिध प्रमाण तथा लक्षण ।

दूरादाहृत्य समिधः संनिदध्याद्विहायसि ।
सायं प्रातश्च जुहुयात्ताभिरग्नि सतन्द्रितः ॥
(मनुः ।)

दूर से समिधों को लाके उन्हें ऊंचे स्थान में धरे और उन समिधों से आलस्य रहित हो संध्याकाल, प्रातःकाल अग्नि में होम करे ।

समित्पुष्पकुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।
शूद्रानीतः क्रयक्रीतैः कर्मकुर्वन्व्रजत्यधः ॥

समिध, फूल और कुशा आदि पूजन सामग्री ब्राह्मण अपने हाथ से ले आवे क्योंकि शूद्र के हाथ से लाया हुआ या मोल लिया हुआ से कर्म करनेवाला नरक को जाता है।

पलाशखदिराश्वत्थ शम्युदुम्वरजा समित् ।
अपामार्गार्कदूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः ॥

ढाक, खैर, पीपल, गूलर, शमी, चिचिड़ी, मदार की लकड़ी, दूब और कुश ये समिधायें हवन में बुधजनों ने कही है।

पलाशफल्गुन्यग्रोधाः प्लक्षाश्वत्थविकङ्कताः ।
उदुम्वरस्तथा विल्वश्चन्दनो यज्ञियाश्चये ॥
सरलो देवदारुश्च शालश्च खदिरस्तथा ।
समिदर्थे प्रशस्ताः स्यु रेते वृक्षाविशेषतः ॥

(वायु पुराणे।)

ढाक, पट, पाकर, पीपल, गूलर, वेल, चन्दन, देवदार, खैर इन यज्ञ वृक्षों को विशेष करके समिध निमित्त ग्रहण करना चाहिये। फाल्गु शाल, सरल ये वन के वृक्ष हैं, शाल लम्बा होता है, सरल देवदार की तरह धूप में काम देता है, वैकंक का श्रुवा बनता है।

सत्वचः समिधः स्थाप्य ऋजुश्लक्ष्णाः समास्तथा ।
शस्तादशांगुलास्तास्तु द्वादशांगुलिकास्तुताः ॥
आर्द्राः पक्काः समच्छेदास्तर्जन्यंगुलिवर्तुलाः ।
अपाटिताश्च विशिखाः कृमिदोष विवर्जिताः ॥
ईदृशीहोंमयेत्प्राज्ञः प्राप्नोति विपुलां श्रियम् ।

त्वचा सहित, श्रेष्ठ सीधी चिक्कन, गीली, पकी हुई, बिना फटी हुई, बिना शाखा की, जिसको कीड़े न खाये हों ऐसी समिध दश अंगुल की या बारह अंगुल की जो तर्जनी की तरह गोल हो हवन करने से विशेष लक्ष्मी को प्राप्त होता है। तथा च कात्यायनः

* नांगुष्ठादधिकाग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित्।
न निर्मुक्तात्वचा चैव न सकीटा न पाटिता॥
प्रादेशान्नाधिकान्नोना न च शाखा समायुता।
न सपर्णा न निर्वीर्या होमेषु च विजानता॥

जो अंगूठे से अधिक मोटी न हो, त्वचा युक्त, जिसको कीड़े न खाये हों और न फटी हो ऐसी समिध ग्रहण करनी चाहिये। प्रदेशमात्र (अंगूठे से तर्जनी पर्यंत) से अधिक कम हो, न शाखा सहित हो, न पत्ते लगे हों और जो घुनी न हो ऐसी समिध होम के निमित्त जानना चाहिये।

समिधो मूलतोद्व्यंगुलं विहाय मध्यमानामिकांगुष्ठैर्जुहुयात् तथा च। प्रागग्राः समिधोदेयाः।

होम करते समय समिध को एक ओर दो अंगुल छोड़कर मध्य की तथा उसके पास की अंगुली अंगूठे से युक्त अर्थात् मृगी मुद्रा से होम समिध के अग्र भाग से अग्नि में करे।

---

* विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्रास्सुषिराः कृशाः। दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धि विनाशकाः॥ प्रागग्राः समिधोदेया तास्च काम्येष्वपाटिताः। शान्त्यर्थेषु प्रसस्तार्द्रा विपरीता जिघांसत॥ (मरीचिः।)

होतव्यामधु सर्पिर्भ्यां दध्नाक्षीरेण संयुता: ।
प्रादेशमात्रा: समिध अशाखा अपलाशिनी: ॥
(कर्मप्रदीपे ।)

प्रादेश प्रमाण समिध जो शाखा और पत्त से रहित हो ऐसी शहत, घृत, दही और दूध में भिगी हुई होम करे। होतव्या मधु सर्पिर्भ्यां० वा० व० का भी सम्मत है।

दध्यलाभे पय: कार्यं मध्वलाभेतथागुड: ।
घृतप्रतिनिधं कुर्यात्पयो वा दधि वा नृप ॥
(विष्णु धर्मोत्तरे ।)

हे राजन्! यदि समय पर दही न हो तो उसकी जगह दूध लेना, शहत न हो तो गुड़ और घी* की जगह दूध या दही ग्रहण करे।

अग्नि प्रज्वलनम् ।

होतव्ये च हुतेचैव पाणिशूर्पस्फयदारुभि: ।
न कुर्यादग्निधमनं कुर्याद्वा व्यजनादिना ॥

---

*आज्य होमेषु सर्वेषु गव्यमेव घृतं भवेत्। तद्भावे महिष्यास्तु आजमाविक मेव च ॥ तदभावे तु तैलंस्यात्तदभावेतु आर्तिलं। तद भावेतु कौसुम्भं तदभावेतु सार्षपम् ॥ (बौधायन:) ॥ उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषी भवं। अधमं छागली जातं तस्माद्गव्यं प्रशस्यते ॥ आज्याभावे गृहीतव्यो सुतैलं तिल सम्भवं। (पिंगलामते)

मुखेनैके धमन्त्यग्निं मुखाद्ध्येषोऽध्यजायत।
नाग्निं मुखेनेति च यल्लौकिके योजयन्ति तत्।
(कात्ययनः।)

जिस अग्नि में होम करना हो या किया हो उसको हाथ सूप, स्फ्य (यज्ञ का तलवार की तरह पात्र) और लकड़ी इनसे अग्नि न प्रज्वलित करे (जलावे) किन्तु पंखे आदि से करे। कोई मुख से अग्नि को जलाते हैं क्योंकि यह अग्नि मुख से ही उत्पन्न हुआ है और कोई का यह कहना है कि मुख से अग्नि को न जलावे परन्तु यह कहना लौकिक अग्नि के विषे है यज्ञ की अग्नि में नहीं।

न कुर्यादग्निधमनं कदाचिद्व्यजनादिना।
मुखेनैव धमेदग्निं धमन्या वेणु जातया॥
(आपस्तम्बः।)

कभी भी पंखे आदि से अग्नि को न जलावे किन्तु मुख से ही वांस की पूपली द्वारा प्रज्वलित करे। "तथाच"

पट्टकेन भवेद्व्याधिः शूर्पेण धननाशनम्।
पाणिनामृत्युमाप्नोति कर्म सिद्धिर्मुखेनतु॥

वस्त्र द्वारा जलाने से रोग होता है, सूप से धन का नाश और हाथ से मृत्यु होती है और मुख द्वारा जलाने से अर्थात ऊपर कथनानुसार वेणु द्वारा प्रज्वलित करने से कर्म की सिद्धि होती है।

योऽनर्च्चिषि जुहोत्यग्नौ व्यङ्गारिणि च मानवः।
मन्दाग्नि रामयावीच दरिद्रश्चैव जायते॥

तस्मात्समिद्धे होतव्यं नासमिद्धेकदाचन।
आरोग्यमिच्छतायुश्च श्रियमात्यन्तिकीम्परास्॥

(कात्यायनः।)

जिसमें ज्वाला और अंगार नहीं है ऐसी अग्नि में जो मनुष्य होम करता है उसको क्षुधा नहीं लगती (उदर रोग) रोगी और दरिद्री होता है। इससे आरोग्यता, आयुःऔर श्रेष्ठ लक्ष्मी का चाहनेवाला सदा जलती हुई अग्नि में होम करे बिना जलती हुई में न करे। क्योंकि

*अन्धोबुधः स धूमेतु जुहुयाद्यो हुताशने।
यजमानोभवेदंधः स पुत्र इति च श्रुतिः॥

धुएँ सहित अग्नि में जो होम करावे तो पण्डित अन्धा होता है और करनेवाला यजमान पुत्र सहित अन्धा हो ऐसी श्रुति है।

होमकाल।

सूर्य्यऽस्त शैलमप्राप्ते षट्त्रिंशद्भिः सदांगुलैः।
प्रादुष्करणमग्नीनां प्रातर्भासाञ्च दर्शनात्॥

---

* क्षुत्तृडभ्यां क्रोध संयुक्तो हीन मन्त्रोजुहोति यः। अप्रवृद्धेस धूमे वा सोंधःस्यादन्यजन्मनि॥ स्वल्पेरूक्षेसस्फुलिंगेवामवर्त्ते भयानके। अर्द्धकाष्ठैश्च संपूर्णेफूत्कारवति पावके॥ कृष्णार्चिषि सुदुर्गन्धे तथा लिहति मेदनीम्। आहुतीर्जुहुयाद्यस्तु तस्यनाशोभवेद्ध्रुवम्॥

(ब्रह्मपुराणे।)

हस्तादूर्ध्वं रविर्यावद्गिरिं हित्वा न गच्छति ।
तावद्धोमविधिः पुण्यो नात्येत्युदित होमिनां ॥
(कात्यायनः ।)

जिस समय सूर्य अस्ताचल पर्वत से छत्तीस अंगुल ऊपर हो उस समय संध्या को और प्रातःकाल किरणों के दीखने पर प्रज्वलित करे। जब तक सूर्य उदयाचल से हाथ भर से ऊंचे न हों तब तक होम की विधि भ्रष्ट नहीं होती अर्थात् इतने काल तक उदय काल ही रहता है तब तक करे परन्तु यह काल नित्य का नहीं है कदापि काल में कार्यवश करे। यथा

*यावन्नापैति लौहित्यं तावत्सायं तु हूयते ।
प्रातः सूर्योदयात्पूर्वं प्रायश्चित्तमतः परम् ॥

जब तक आकाश में ललामी रहे तब तक सायंकाल को होम करे और प्रातःकाल सूर्य उदय के पहिले करे इनको उल्लंघन करने पर प्रायश्चित्त करना चाहिये ।

रजोनीहार धूम्राभ्र वृक्षाग्रान्तरिते रवौ ।
सन्ध्यामुद्दिश्य जुहुयाद्धुतमस्य न लुप्यते ॥

---

१ यावत्सम्यङ्न भाव्यते नभस्पृक्षाणि सर्वतः । न च लोहितिमापैति तावत्सायंतु हूयते ॥ (छन्दोगपरिशिष्टे) ॥ मुख्यकालेनरैः कर्म कर्तुं यदि न शक्यते । गौण कालेऽपि कर्त्तव्यं तदनादिष्ट पूर्वकम् ॥ (कारिकायाम्) ॥ आसीनापश्चिमां सन्ध्यां जपं कुर्यादतन्द्रितः । अग्निकार्यं ततः कुर्यान्मेधावीतदनन्तरम् ॥ (सम्वर्तः ।)

यदि सूर्य धूल, नीहार (कुहिरा) धुवाँ, बद्दल और वृत्त इनसे ढका हो उस समय संध्या समझकर जो होम करे तो उसका होम नष्ट नहीं होता ।

जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोद्यात् ।
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवेह तिष्ठेदासूर्य्यदर्शनात् ॥
अग्निकार्य्यं ततः कुर्यात् सन्ध्ययोरुभयोरपि ।

संध्याकाल में तारों के निकलने तक गायत्री का जप करे इसी प्रकार प्रातः संध्या को भी सूर्योदय तक उपासना करे पश्चात् दोनों संध्याओं में अग्निहोत्र करे ।

* ततोऽभिवादयेद्वृद्धा न सावहमितिब्रुवन् ।
गुरुंचैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥

पश्चात् अग्नि को अभिवादन करके वृद्धों को अपना नाम लेकर प्रणाम करे और सावधान चित्त होकर पढ़ने के लिए गुरु के निकट जावे ।

कृताग्निकार्यो भुञ्जीत वाग्यतो गुर्व्वनुज्ञया ।
आपोशन क्रियापूर्व्वं सत्कृत्यान्नमकुत्सयन् ॥

अग्निहोत्र करके गुरु की आज्ञा ले, मौन होकर आचमनपूर्वक भोजन करे और उस अन्न की निन्दा न करे बल्कि वन्दना करे कि अच्छा भोजन बना अत्यन्त प्रिय लगा ।

---

* अष्टाङ्गे प्रणिपातेन त्रिधानास्तेन सुव्रताः । त्रिप्रदक्षिणा योगेन बन्धो वै ब्राह्मणोगुरुः ॥ (लिङ्ग पुराणे) ॥

अग्निविवरण।

अहिंसन्नरण्यात्समिध आहृत्य तस्मिन्नग्नौ पूर्ववदाधाय वाचं विसृजते।

(पा० गृह्यसूत्रे।)

अहिंसन् अच्छिन्द भू स्वयं भग्ना अरण्यान्नग्रामात् समिधः पूर्वोक्त लक्षणाः आहृत्य आनीय तस्मिन्नग्नौ यत्र उपनयांग होमः कृतस्तस्मिन् पूर्ववत्परिसमूहनादि त्र्यायुषकरणांतं यावत् आधाय हुत्वा वाचं विसृजते मौनं त्यजति वाग्यमपत्ते।

(ह० भाष्य।)

बिना तोड़ी हुई जो आप से आप गिरी (पतित) हो ऐसी समिध पहिले कहे हुए लक्षण के अनुसार जंगल से (गाम से न लेवे) ले आ के उस अग्नि में जिसमें उपनयन हुआ है परिसमूहनादि उक्त क्रम से हवन करे त्र्यायुषं,पर्यंत मौन रहे। इस वचन से यह सिद्ध होता है कि जिस अग्नि से उपनयन हुआ है उसकी यथावत रक्षा करते हुए उसी में हवन करे “यावद्धुत मग्नि रक्षणमिति गर्गपद्धतौ” जब तक अग्नि होत्र रहे तब तक अग्नि की रक्षा करे अर्थात् जब तक समावर्तन न हो।

उपनयनाग्नि स्त्रिरात्रं धार्यः। त्र्यहमेतमग्निं धारयीत्यापस्तम्बोक्ते।

उपनयन की अग्नि तीन रात्रि रखना ऐसा आपस्तम्ब का मत है। प्रायः आजकल ऋग्वेदियों में ऐसा होता है। कुछ लोग समिध तपा के रखते हैं।

सांख्यायन गृह्ये समिदाधानं ।

आचम्यप्राणायामं कृत्वा संकल्पं कुर्यात् पश्चात् स्थं-डिले पञ्चभूसंस्कारान्कृत्वा लौकिक मग्निं प्रतिष्ठाप्यत्रिः परिसमुह्यत्रिःपर्युक्ष्य दक्षिणं जान्वाच्य प्रादेशमात्रीश्च-तस्रः समिधोमन्त्रैरग्नावादध्यात् ॥ मन्त्रः ॥ ॐ अग्नये समिध माहार्षं बृहते जातवेदसे समेश्रद्धां च मेधां च जात-वेदाः प्रयच्छतु स्वाहा १ ॐ एधोस्येधिषीमहि समिदसि तेजोसि तेजोसि तेजोमयिधेहि स्वाहा २ ॐ समिद्धोसमं समर्द्धय प्रजयाच धनेन च स्वाहा ३ ॐ एषाते अग्ने समि-त्तयावर्द्धस्वचा चप्यायस्व वर्द्धिषीमहि च वयमाचप्याशिषी महि स्वाहा ४ नात्रत्यागः ततोऽग्निंत्रिः पर्युक्ष्योत्थायः

ॐ अग्निः श्रद्धांच मेधांच विनियातं श्रुतं च मे ।
ईलितो जात वेदाअप श्रुतेन संप्रयच्छतु ॥

अनेन मंत्रेणाग्निमुपतिष्ठेत । ततोऽपिविश्य हुताग्ने र्त्र्यायुषंमंत्रेण भस्मं धारयेत् । इति सांख्यायनगृह्ये गृह्य सूत्रे गदाधर भाष्ये-स्मृत्युक्तं-माध्याह्निकं सन्ध्योपासनम् । ततोग्नेः पश्चादुपविश्यपाणिनाऽग्निं परिसमूहतीत्यादि त्र्यायुष करणान्तं यथोक्तम् । तथा च माध्याह्ने सायाह्ने च सन्ध्योपासनान्ते प्रत्यहमग्निचरणम् । एके प्रातरप्यग्नि परिचरणमिच्छन्ति ।

इन वचनों से यह विदित होता है कि मध्यान सायं दो काल हवन करना और प्रातः सायं गृह्यादि कहते हैं ।

नित्य अग्नि तथा प्रवासादि में निर्णय

'अथातो धर्म जिज्ञासा' केशान्ताद्दूर्ध्वंमपत्नीक उत्सन्नाग्नि रनग्निको वा प्रवासी ब्रह्मचारी चानग्निरिति ग्रामाग्निं माहृत्य पृष्ठोदिवीत्यधिष्ठाप्य त्रिभिश्च सावित्रैः प्रज्वाल्यतां सवितुस्तत्सवितुर्विश्वानि देव सवितरिति पूर्ववदनतैर्हुत्वा पाकं पचेत् ।

स्त्री रहित वा जिनसे अग्नि छूट गई है वा अग्नि रहित वा प्रवासी अथवा ब्रह्मचारी जिसने अग्नि रक्षण नहीं किया उन्होंने

"अग्निरग्रे रुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः अनुसूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावा पृथिवी आततन्थ ।"

इस मंत्र से अग्नि ले के (गाम से अग्नि ले आवे ।)

ओं पृष्ठोदिवि पृष्ठोऽग्निः पृथिव्यां पृष्टोविश्वा ओषधीराविवेश । वैश्वानरः सहसा पृष्ठोअग्निः सनोदिवासरिषस्पातु नक्तम् ॥

इस मन्त्र से अग्नि स्थापन करे ।

ओं तत्सवितुर्वरेण्य० । ओं ताछँ सवितुर्वरेण्यस्य चित्रामाहं वृणे सुमतिं विश्वजन्याम् यामस्य कण्वो अदुहत्प्रपीताछँ सहस्रधारां पयसा महीं गाम् । ओं विश्वानि देव सवितुर्दुरितानि परासुव यद्भद्रन्तं न आसुव ।

इन तीनों मंत्रों से अग्नि प्रज्वलित कर ध्यान कर आहुति देवे ।

अग्निस्तुनामधेयादौ होमे सर्वत्र लौकिकः ।
अपिवैवाहिको येन न गृहीतः प्रमादतः ।
पितर्युपरते तेन ग्रहीतव्यः प्रयत्नतः ॥
कृतदारो न तिष्ठेच्च क्षणमप्याग्निना विना ।
तिष्ठन् भवेद्द्विजो व्रात्यस्तथा च पतितोभवेत् ॥
पितृपाकोपजीवीस्यात् भ्रातृपाकोपजीवकः ।
ज्ञानाध्ययन निष्ठोवा न दुष्येताग्नि नाविना ॥
योऽग्निं स्मार्तमनादृत्य कर्मस्नान जपादिकम् ।
होमान्समाचरेद्विप्रो न सपुरयेन युज्यते ॥
योदद्यात्कांचनंमेरुं पृथिवीं च ससागराम् ।
तत्सायं प्रात होमस्य तुल्यं भवति वा न वा ॥
योऽगृहीताविवाहाग्निं गृहस्थ इतिमन्यते ।
अन्नन्तस्य भोक्तव्यं वृथापाकोहिसस्मृतः ॥
वृथा पाकस्य भुञ्जानः प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
प्राणायाम त्रयं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुद्ध्यति ॥
(कात्यायनः ।)

त्रयाणामिहवर्णानां गृहस्थाश्रमवासिनां ।
नास्तिक्यादथवाऽलस्याद्योऽग्नीन्नाधातु मिच्छति ॥
यजेतवान यज्ञेन सयाति नरकान् बहून् ।
तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन ब्राह्मणोहि विशेषतः ॥

आधायाग्निं विशुद्धात्मा यजेत परमेश्वरम् ।
अग्निहोत्रात्परोधर्मो द्विजानां नेह विद्यते ॥
तस्मादाराधयेन्नित्यमग्निहोत्रेण शाश्वतम् ।
श्रौतस्त्रेताग्नि संबन्धात्स्मार्तः पूर्वेमयोदित ॥
श्रेयस्कर तमः श्रोतस्तस्माच्छ्रौतं समाचरेत् ।
उभावपि हितौ धर्म्मौ वेद वेद विनिःसृतौ ॥
शिष्टाचारस्तृतीयः स्याच्छ्रुति स्मृत्योरभावतः ।
(कूर्मपुराणे ।)

नित्य कर्म ।

उत्थाय पश्चिमे रात्रे तत आचम्य चोदकम् ।
मुख शुद्ध्यर्थ माद्दौतु गण्डूष त्रितयं चरेत् ॥
(अंगिरः ।)

दो घड़ी रात्रि रहे उठकर जल से आचमन करे पश्चात मुख शुद्ध के निमित्त तीन कुल्ला करे परन्तु प्रथम जल को "जल पुरुषाय विद्महे नीर पुरुषाय धीमहि तन्नो अंबु प्रचोदयात्।" इस जल गायत्री से नेत्र में लगावे "उत्थाय नेत्रे प्रक्षाल्य" पश्चात् आचमनादि करे। पुनः इष्ट देवं शिव विष्णु आदि पंचदेवों का स्मरण करे अथवा और जो पुण्य श्लोक पढ़ना हो पढ़े शिव, पंचानन, हर, त्र्यम्बक, निरंजन, अविनाशी, विष्णु, वामन, नारायणादि नामों को ले वा प्रातःस्मरण सूक्त ऋग् यजुर्वेद में कहे हुए मंत्रों को कहे। ज्ञान योग मार्ग वाला उस समय गुरुपाद को स्मरणकर परमात्मा के ध्यान में लवलीन हो।

पश्चात् दाहिना या वायां जो स्वर चलता हो उसके अनुसार पृथ्वी को नमस्कार कर पाद रक्खे ।

समुद्र मेखले देवि पर्वतस्तन मण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्वमे ॥

पुनः शौच (मल त्याग) निमित्त जल लेके जावें, सवेरे उत्तर मुख करके जनेऊ दहिने कान पर चढ़ा के बैठे परन्तु पात्र को जहां तक मल त्याग करे न *स्पर्श करे पश्चात् जल से शुद्ध होके अर्थात् एक वार लिंग† में, पांच वार गुदा में मृतका लगा के जल से धो डाले तदनन्तर जल के समीप आकर दशवार वाम हाथ में मृतिका लगावे पुनः दोनों हाथ में सातवार लगा के धो डाले फिर पात्र को तीन वार पावों में तीन वार मृतिका लगा के धो डाले पुनः १२ बारह कुल्ला करे जैसा कहा है ।

कुर्याद्द्वादश गण्डूषान् पुरीषोत्सर्जने ततः ।
मूत्रोत्सर्गे च चतुरो भोजनान्ते तु षोडश ॥
भक्ष्यभोज्यावसाने तु गण्डूषाष्टक माचरेत् ।
(आश्वालायनः ।)

मल त्याग करने में बारह, मूत्र त्याग में चार, भोजन के अन्त में सोलह और साधारण भोजन में आठ कुल्ला करे ।

गृहीत्वा जलपात्रं तु विण्मूत्रं कुरुतेयदि । तज्जलं मूत्र सदृश मतश्चान्द्रायणं चरेत् ।

एकं लिंगे गुदे पंच दशवारं वाम हस्तयोः । उभयोस्सप्तवारं च पादयोश्च त्रिभिःत्रिभिः ।

पुनः दंत धावन (दतोन) दूधवाले वृक्ष से या कंटकवाले वृक्षों से बारह अंगुल प्रमाण की करे (परन्तु जब तक ब्रह्मचर्यव्रत है अर्थात् समावर्तन तक मृत्तिकादि से मुख शुद्ध करले) अनन्तर स्नान* करे।

प्रथम संकल्प करे। ओ३म्तत्सत् अद्येत्यादि अर्थात् समग्र संकल्प बोलकर अन्त में अपना गोत्र नाम उच्चारण करके

मम कायिक वाचिक मानसिक त्रिविधतापोपशमनार्थं श्रीपरमेश्वर प्रीत्यर्थं प्रातःस्नानमहं करिष्ये ॥

इस प्रकार बोल कर जल के ऊपर हाथ रख यह बोले या हाथ जोड़े।

नमामिगंगे तव पाद पङ्कजं सुरासुरैर्वंदित दिव्यरूपम्।
भुक्तिं च मुक्तिं च ददासिनित्यंभावानुसारेण सदानरेभ्यः ॥

पुष्कराद्यानितीर्थानि गंगाद्याः सरितस्तथा ।
आगच्छन्तु पवित्राणि स्नानकाले सदा मम ॥
त्वं राजा सर्वतीर्थानां त्वमेव जगतः पिता ।
याचितं देहि मे तीर्थं सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
अपामधिपतिस्त्वंच तीर्थेषु वसतिस्तव ।
वरुणाय नमस्तुभ्यं स्नानानुज्ञां प्रयच्छ मे ॥

---

* असक्ता व शिरस्कं च स्नानमस्य विधीयते । आर्द्रेण वाससावापि मार्जनं दैहिकंस्मृतम् ॥ अशक्तेन शरीरेण यः स्नानंकुरुतेद्विजः। आत्मघात समं पापमशस्त्र वध मुच्यते॥ (जाबालिः)।

गंगे च यमुनेचैव गोदावरि सरस्वति।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥
वेदमाता महादेवि रत्नपीठे परिस्थिते।
महाविद्ये च गायत्रि जलेऽस्मिन्सन्निधिं कुरु॥

पश्चात् जल में सुरभी मुद्रा दिखा के प्रणव व्याहृति सहित लिङ्ग के स्नान करे। स्नान करते समय गंगाष्टक या पुरुष सूक्त या और वेदमंत्रों को पढ़ता रहे पश्चात् आचमन कर वस्त्र पहिने। अनन्तर मृगचर्म या कुशासन या ऊन के आसन पर संध्या के निमित्त बैठकर भस्म * धारण करे॥ यथा "क्रिया सारे"।

---

* श्राद्धे यज्ञे जपे होमे वैश्वदेवे सुरार्चने। धृतत्रिपुण्ड्रः पूतात्मा मृत्युंजयति मानवः॥ (कात्यायनः।)

रुद्राग्नेर्यत्परं वीर्यं तद्भस्म परिकीर्तितम्। तस्मात्सर्वेषु कालेषु वीर्यवान्भस्मसंयुतः॥ भस्म निष्ठस्य दह्यन्ते दोषा भस्माग्नि संगमात्। भस्मस्नान विशुद्धात्मा भस्मनिष्ठ इतिस्मृतः॥ औपासन समुत्पन्न गृहस्थानां विशेषतः। समिदग्निं समुत्पन्नं धार्यं वै ब्रह्मचारिणा॥ अन्येषामपि सर्वेषां धार्यंचैवानलोद्भवम्॥ ये भस्म धारणंत्यक्त्वा कर्म कुर्वन्ति मानवाः। तेषां नास्ति विनिर्मोक्षः संसाराज्जन्म कोटिभिः॥ मध्यांगुलि त्रयेणैव स्वदक्षिण करस्य च। त्रिपुण्ड्रं धारयेद्विद्वान्सर्वकल्मषनाशनम्॥ (बृ० जाबालोपनिषद्)।

वाम हस्ततले भस्म क्षिप्त्वाऽऽच्छाद्यान्यपाणिना।
अग्निरित्यादिमन्त्रेण स्पृशन् भस्माभिमंत्र्य च॥

"तथा च"

अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैः शुद्धं ब्रह्माभिमन्त्रितम्।
शिवमन्त्रेणतद्धार्यं मन्त्रेणाष्टाक्षरेण वा॥
गायत्र्यावा च देवर्षे मन्त्रेण प्रणवेन वा।
करोति शिवमन्त्रेण यस्त्रिपुंड्रं द्विजोत्तमः॥
त्र्यक्षः शुद्धतरः सौम्यः शिवलोके महीयते।

(पुलस्त्यः।)

बायें हाथ के तलवे पर भस्म रख दहिने हाथ से ढांपे। अग्नि इत्यादि मंत्र से स्पर्श कर अभिमंत्रित करे। अग्नि इत्यादि मंत्र से शुद्ध भस्म को मंत्रित कर शिवमंत्र से धारण करे अथवा अष्टाक्षर मंत्र वा गायत्री मंत्र से अथवा हे देव ऋषि! चाहे प्रणव ही से धारण करे। जो श्रेष्ठ ब्राह्मण शिवमंत्र से त्रिपुंड्र धारण करता है वह सात्विकी शिवलोक में जहां कर्पूरगौर-त्र्यम्बक रहते हैं वहां प्राप्त होता है।

सद्योजातादि पञ्च ब्रह्ममन्त्रैः परिगृह्याग्निरिति भस्मेत्यभिमन्त्र्य मानस्तोक इति समुद्धृत्य त्रियायुष-मिति जलेन संसृज्य त्र्यम्बक मिति शिरोललाटवक्षः स्कन्धेषु धृत्वा पूतो भवति मोक्षी भवति।

(जावालिः।)

सद्योजातादि पांच मंत्रों से भस्म को ले अग्निरिति मंत्र से अभिमंत्रित करे मानस्तोकेति मंत्र से हाथ उठा के भस्म

को रगड़ता हुआ त्र्यायुषं मंत्र से छोड़ गीलाकर शिर, मस्तक हृदय, स्कंध आदि में लगावे इससे पवित्र होता है मोक्ष को प्राप्त होता है । यथा

ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमोनमः। भवेभवेनातिभवे भवस्वमां भवोद्भवायनमः ॐ वामदेवाय नमोज्येष्ठायनमः श्रेष्ठायनमोरुद्रायनमः कालायनमः कल-विकरणाय नमो बलविकरणायनमो बलायनमो बलप्रमथ-नायनमः सर्वभूतदमनायनमो मनोन्मनायनमः ॐ तत्पु-रुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि तन्नोरुद्रः प्रचोदयात् ॐ अघोरेभ्योथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॐ ईशानः सर्वविद्या-नामीश्वरः सर्वभूतानाम् ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणाधिपतिर्ब्रह्मा शिवोमे अस्तु सदाशिवोम् ।

इन मन्त्रों को पढ़ता हुआ भस्म ले बायें तलवे में रक्खे पश्चात् दाहिने हाथ के तलवे से ढांपे (संपुट की तरह करे) मंत्र पढ़े ।

ॐ अग्निरितिभस्म वायुरितिभस्म जलमितिभस्म स्थलमितिभस्म व्योमेतिभस्म सर्वꣳहवाइदंभस्म मनएतानि चक्षूंषि भस्मानीति ।

इस मंत्र को पढ़कर पश्चात् दहिना हाथ हटा के भस्म को दहिने हाथ की अंगुलियों से उठा उठाके छोड़े अर्थात् मसले और यह मंत्र पढ़े ।

ॐ मानस्तोके तनये मानऽआयुषि मानो गोषुमा-नोऽअश्वेषुरीरिषः। मानोव्वीरान् रुद्रभामिनोव्वधीर्हविष्मन्तः सदमित्वा हवामहे।

मंत्र पढ़ने के अनन्तर भस्म में जल छोड़ते हुए यह मंत्र पढ़े।

ॐत्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्।
यद्देवेषु त्र्यायुषं तन्नोऽअस्तु त्र्यायुषम्॥

इस मंत्र से जल छोड़कर मर्दन करे अनन्तर।

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिम्पुष्टि वर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीयमामृतात्॥

इस मंत्र को बोलता हुआ शिर, मस्तक, हृदय, कंठ, बाहु उदर आदि में लगावे। परन्तु योगमार्गी, ज्ञानी को प्रणव ही से लगाना चाहिये और भस्म लगी हुई हाथ में भस्मयुक्त तीन आचमन गायत्री वा प्रणव से करे।

प्रातः स सलिलं भस्म मध्याह्ने गन्धमिश्रितम्।
सायाह्ने निर्जलंभस्म एवं भस्म विलेपयेत्॥

सवेरे जल मिलाकर, मध्याह्न में चन्दन मिलाकर और सायंकाल को सूखी भस्म धारण करे। अनामिका मध्यमा तर्जनी इन तीन अंगुलियों से भस्म लगावे।

भस्म लगाके अनन्तर रुद्राक्ष* धारण करे पश्चात् ईशान-

---

* विभूति धारणं कार्यं रुद्राक्षाणां च धारणम्।
कर्मयोगेन कर्तव्यं सर्वदा जप साधकैः॥ रुद्राक्ष मूलं

कोण में मुखकर संध्या यथावत् विधि से करे। पश्चात् अग्निहोत्र करे।

होम विधान ।

यथा—प्रातः सन्ध्योपासनं कृत्वा धृत दंडादिर्गृही-तेन्धनाज्यसमित्स्थापिताग्निसमीपे स्वासने उपविश्याचम्य प्राणानायम्य देशकाल कीर्तनांते मम सतेजो ब्रह्मवर्चस सिद्ध्यर्थमग्नि नारायण प्रीतये प्रातरग्नि परिसमूहनं समिदाधानादिकं च करिष्ये ॥ अग्निमुखं कृत्वा चत्वारि शृङ्गेति ध्यात्वा गन्धादिनाऽभ्यर्च्य । ततोऽग्ने सुश्रवसुत्यादि पञ्चभिर्मन्त्रैः प्रतिमन्त्रं घृतप्लुतेन्धन प्रक्षेपः । जलेनाग्निं पर्युक्ष्य । उत्थाय आज्य प्लुत समिधमेकांगृहीत्वाऽग्नये-समिधमाहार्षं मित्यारभ्यभूयासछँस्वाहेत्यतं मंत्रं पठित्वा सामग्नौ जुहुयात् । अनेनैव मंत्रेण द्वितीयां तथा तृतीयां समिधमादध्यात् । पुनरग्नेसुश्रव इत्यादि पञ्चभिर्मन्त्रैरिं-धनं प्रक्षिप्य । तूष्णीं पाणी प्रतप्य तनूपा अग्ने इत्यादि मन्त्रैः प्रतिमन्त्र मुखविमार्जनम् । पुन: अङ्गानिच्च इत्यादि यशोबल मित्यन्तमन्त्रैः प्रतिमन्त्रं प्रत्यङ्गालम्भनं कार्यम्। तत्त्र्यायुषमिति प्रतिमन्त्रेण भस्मललाटे ग्रीवायां दक्षिणांसेछँ सेहृदि च धार्यम् । ततो गोत्रनाम पूर्वकं वैश्वा-

---

तद्ब्रह्मा तन्नालं विष्णु रेवच । तन्मुखं रुद्र इत्याहुस्त-द्विदुस्सर्वदेवताः। यस्य भालेविभूतिर्न नांगेरुद्राक्षधारणम् । नशंभोर्भवनेपूजा स विप्रः श्वपचाधमः । (दे० भा० ।)

नरादीनामभिवादनं । अनेन प्रातरग्नि परिचरणेन अग्नि नारायणः प्रीयताम् । एवं सायम् ।

संध्या के अनन्तर दण्ड अजिन धारण कर कुश समिध इंधन सहित स्थापित अग्नि (कुण्डादि) के समीप (ब्रह्मचारी को गुरु की अग्नि में होम कहा है अथवा उपनयन की अग्नि को पालन करे या समय पर कल्पना करले) जाकर अपने आसन पर बैठ आचमन कर प्राणायाम करे तदनन्तर संकल्प करे। "यथा" देशकालादि जैसा संकल्प का प्रकार है करके अनन्तर अपना गोत्र नाम उच्चारण कर

मम सतेजो ब्रह्मवर्चस सिद्ध्यर्थं अग्निनारायण प्रीतये प्रातरग्नि परि समूहनं समिदाधानादिकं च करिष्ये ।

पुनः वेदी पर पंच भू संस्कार करे अर्थात् कुश से वेदी को बटोरे कुश जल से वेदी पर छींटा दे, गोमय से लेपन करे, स्रुव के मूल भाग से वा दर्भ के मूल से प्रादेशमात्र तीन रेखा पश्चिम से पूर्व को (उल्लेखन) करे (खींचे) परन्तु वेदी के दक्षिण से आरंभ कर उत्तर को ले जावे, (कोई ६ रेखा कहते हैं) पुनः अंगुष्ठ अनामिका से उन रेखाओं की मृत्तिका को ऊपर को फेंके, अनन्तर अधः हाथ से जल छिड़के (न्युब्ज पाणिना) इस प्रकार पंचभू संस्कार करके काष्ठ रख अग्नि को बांस की पोपली से प्रज्वलित कर ध्यान करे ।

* ॐ चत्वारि शृङ्गात्रयोऽअस्य पादा द्वेशीर्ष सप्तहस्ता-

---

* अग्नेर्ध्येयरूपं । रुद्र तेजः समुद्भूतं द्विमूर्धानं-द्विनासिकम् । षण्नेत्रं च चतुः श्रोत्रं त्रिपादं सप्तह-

ऽस्य। त्रिधावद्धो वृषभोरोरवीति महोदेवोमर्त्यां ऽ-आविवेश॥

इस मंत्र से ध्यान कर अग्नि का चंदन अक्षत पुष्प से पूजन करके घी से डूबा हुआ गोमय के सूखे हुए पिंडो (इंधन, परनं) से आगे लिखे हुए पांच मंत्रों से हवन करे

ॐ अग्ने सुश्रवः सुश्रवसंमांकुरु १ ॐ यथात्वमग्ने सुश्रवः सुश्रवा असि २ ॐ एवंमाᳫँसुश्रवः सौश्रव संकुरु ३ ॐयथात्वमग्नेदेवानां यज्ञस्य निधियोऽअसि ४ ॐएवमहं मनुष्याणां वेदस्य निधियोभूयासम् ५।

ततः प्रदक्षिण मग्निंवारेणा पर्युक्ष्य उत्थाय स्वप्रा-देशमितां घृताक्त पलाश समिधमादाय।

पुनः अग्नि के चारों ओर जल छोड़े पश्चात् खड़ा होके ढाक की घी से लगी हुई समिध को हाथ में ले आगे के मंत्र से हवन करे। यथा

स्तकम्॥ याम्यभागे चतुर्हस्तं सव्य भागे त्रिहस्तकम्। स्रुवंस्रुचञ्च शक्तिं च अक्षमालांच दक्षिणे॥ तोमरं व्यजनं चैव तपात्रन्तु वामके। बिभ्रतं सप्तभिर्हस्तैर्द्विमुखं सप्त-जिह्वकम्॥ दक्षिणे च चतुर्जिह्वं त्रिजिह्वमुत्तरेमुखम्। द्वादशकोटिमूर्त्याख्यं द्विपञ्चाशत्कलायुतम्। स्वाहास्वधा-वषटकार रङ्कितं मेषवाहनम्॥ रक्तमाल्याम्बरधरं रक्त पद्मासन स्थितम्। रौद्रन्तु वह्निनामानं वह्निमावाहया-म्यहम्॥ (रुद्रकल्पे)

ॐ अग्नये समिधमाहार्षं बृहते जातवेदसे यथात्वमग्ने समिधासमिध्यस एवं महमायुषामेधया वर्चसा प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन समिन्धे जीवपुत्रो ममाचार्यो मेधाव्यहमसान्यनिराकरिष्णुर्यशस्वी तेजस्वी ब्रह्मवर्चस्यन्नादो भूयासꣳस्वाहा।

इस मंत्र से तीन समिध तीन वार मंत्र बोलता हुआ हवन करे पुनः बैठकर अग्नि के चारो ओर जल छोड़े पश्चात् अग्नेसुश्रव इत्यादि पांच मंत्रों से इंधन की आहुति देवे। यथा—

ॐ अग्नेसुश्रवः सुश्रवसंमाकुरु। ॐ यथात्वमग्नेसुश्रवः सुश्रवाअसि। ॐ एवं मां सुश्रवः सौश्रवसंकुरु। ॐ यथात्वमग्ने देवानां यज्ञस्य निधिपोअसि। ॐ एव महं मनुष्याणां वेदस्य निधिपोभूयासम्।

इन मंत्रों से पुनः परनों की आहुति दे पश्चात् आगे लिखे हुए सात मंत्रों से

तूष्णीं पाणी प्रतप्य प्रति मंत्रेण मुखविमार्जनम्।

चुप होकर हाथ को प्रति मंत्र से तपा २ के ओठ से ललाट पर्यन्त स्पर्श करे।

ललाटादि चिबुकान्तं स्पृशेदिति हरिहरः॥

ॐ तनूपाऽअग्नेसितन्वम्मेपाहि ॥१॥ ॐ आयुर्दाऽअग्नेऽस्यायुर्मेदेहि ॥२॥ ॐ वर्चोदाऽअग्नेसिवर्चोमेदेहि॥३॥ ॐ अग्नेय्मेषतन्वाऽऊनन्तन्मऽआपृण ॥ ४ ॥ ॐ मेधां मे

देवः सविताऽआदधातु ॥५॥ ॐ मेधां मे देवी सरस्वती आदधातु ॥ ६ ॥ ॐ मेधामश्विनौ देवा वाधत्तां पुष्कर-स्रजौ ॥ ७ ॥

इसके अनन्तर दहिने हाथ से अंगों को स्पर्श करना । यथा

ॐ अङ्गानिचमऽआप्यायंताम् (इति मंत्रेण शिरः प्रभृति पादांत सर्वाङ्गालंभनं–इस मंत्र से अङ्गों को स्पर्श करे) ॐ वाक्चमऽआप्यायताम् (इससे मुख) ॐप्राण-श्चमऽआप्यायताम् इति नासिकयोः (इससे नासिका) ॐ चक्षुश्चमऽआप्यायताम् (इससे नेत्र) ॐ श्रोत्रंचमऽ-आप्यायताम् (कर्ण) ॐ यशोबलचमऽआप्यायताम् ।

पश्चात् भस्म अनामिका से लगावे ।

ॐ त्र्यायुषंजमदग्नेः (ललाटे) ॐ कश्यपस्यत्र्यायु-षम् (ग्रीवायाम्) ॐयद्देवेषु त्र्यायुषम् (दक्षिण बाहुमूले) ॐ तन्नोअस्तुत्र्यायुषम् (हृदये) ।

पश्चात् अग्नि को नमस्कार करे ।

अमुकगोत्रोहममुकशर्माहं भोवैश्वानरत्वामभिवादये इतित्रिभिः । अमुकादिभोः सूर्य अभिवादयामि तथा भोः वरुण अभिवादयामि । अमुकसगोत्र अमुकप्रवरान्विता अमुक शर्माहं भोः आचार्यत्वामभिवादये ।*

---

* भोःशब्दं कीर्तयेदंते स्वास्य नाम्नोभिवादने । आयुष्मान्भवसौम्येति वाच्यः प्रत्यभिवादने॥ जन्म प्रभृति

पश्चात् अर्पण करे अनेनप्रातरग्नि परिचरणेन अग्नि नारायणः प्रीयताम् ।

इसी प्रकार सायंकाल की संध्या कर सायंकाल का हवन करे ।

प्रातः कृत्य से निवृत्त हो यथा क्रम से अध्ययन पश्चात् भिक्षा को जाना है तो गुरु से आज्ञा ले के जावे न जाना हो तो पाक बनाकर या बना हुआ भोजन करे। शास्त्र का नियम ऐसा है कि हवन करके भिक्षा को जावे ।

प्रतिगृह्येप्सितं दण्ड मुपस्थाप्य च भास्करम् ।
प्रदक्षिणां परीत्याग्निं चरेद्भैक्षं यथा विधि ॥ (मनुः)

भोजन प्रकार ।

कृते जाप्येहुतेवह्नौ शुद्धवस्त्र समन्वितः ।
पञ्चयज्ञावशिष्टं च यो भुंक्ते सोऽमृताशनः ॥

सन्ध्या जप करके और अग्निहोत्र तथा अध्ययनादि कार्यों से निवृत हो शुद्ध वस्त्र से युक्त भोजन बनाने पर वलिवैश्व कर जो भोजन करता है वह भोजन अमृत के तुल्य है ।

ताम्बूलाभ्यञ्जने चैव कांस्यपात्रेच भोजनम् ।
यतिश्च ब्रह्मचारी च विधवा च विवर्जयेत् ॥
(प्रचेताः ।)

यत्किंचिच्चिकित्सा धर्ममाचरत्। सर्वं तन्निष्फलं याति एक हस्ताभिवादनं (यमः) अभिवादेतु यो विप्र आशिषं न प्रयच्छति । श्मशाने जायते वृक्षः कङ्क गृध्रोपसेवितः ॥

तांबूल भक्षण (पान खाना) तैल, उपटन लगाना, कांसे की थाली में भोजन, सन्यासी, ब्रह्मचारी और विधवा स्त्री को वर्जित है।

पालाशेपद्मिनी चूते कांचने कदलीदले।
मधूकपात्रे योभुक्त्वा ग्रासगोदानजं लभेत् ॥

ढाक के पत्ते में, कमल, आम, सोने की थाली, केला के और महुआ के पत्ते में भोजन करने से जितना ग्रास खाया जाता है उतना ही गोदान का फल प्राप्त होता है।

शाकादीन्दक्षिणे स्थाप्य भक्ष्यं भोज्यं च वामतः।
अन्नं मध्येप्रतिष्ठाप्य दक्षिणे घृतपायसम् ॥

भाजी (तरकारी) अचार चटनी दहिने तरफ रक्खे, फल मिठाई आदि वाम भाग में, भात रोटी दाल पूड़ी मध्य (बीच) भाग में और दहिनी ओर घी, खीर रक्खे।

आयुष्यं प्रांमुखो भुंक्ते यशस्य दक्षिणामुखः।
श्रियं प्रत्यङ्मुखो भुंक्ते ऋतंभुक्तेह्युदंमुखः ॥
(मनुः।)

आयु की इच्छावाला पूर्व मुख, यश की इच्छावाला दक्षिण मुख, लक्ष्मी की इच्छावाला पश्चिम मुख और सत्य की इच्छावाला उत्तर मुख करके भोजन करे।

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्द्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्याआहाराःसात्विकप्रियाः॥

आयु, सात्विक स्वभाव, बल (ताकत) आरोग्यता, सुख, रुचिकारक चित्त में प्रसन्नता करनेवाले, रसयुक्त, घृत से

तर, उदर में ठहरनेवाला, हृदय को पुष्टि करनेवाला ऐसा सात्विक आहार सात्विकों (ब्रह्मचारी आदि तपस्वी) को प्रिय है ।

मत्तक्रुद्धातुराणां च न भुञ्जीत कदाचन ।
केशकीटावपन्नं च पदास्पृष्टं च कामतः ॥

पागल (जिसका चित्त शुद्ध नहीं है) क्रोधी, रोगी का अन्न तथा जिसमें बाल (केश) पड़े हों या कीड़ा पड़े हों या जो पांव से छू लिया गया हो ऐसा सिद्धान्न कभी न भोजन करे ।

प्राणाग्निहोत्र प्रकारः ।

एव उपनिषदि ।

प्राणो अग्निः परमात्मा पञ्चवायुभिरावृतः अभयं सर्वभूतेभ्यो न मे भीतिः कदाचन । विश्वोवैश्वानरो विश्वरूपं त्वया धार्यते जायमानम् । विश्वं त्वाहुतयस्सर्वा यत्रब्रह्माऽमृतोऽसि महानवोऽयं पुरुषो योऽङ्गुष्ठाग्रे प्रतिष्ठितः । तमद्भिः परिषिञ्चामि सोऽस्याऽन्ते अमृताय च ।

अनाविरत्येष बाह्यात्मा ध्यायेताऽग्निहोत्रं जुहोति। सर्वेषामेवसूनुर्भवति । अस्य यज्ञ परिवृतयाऽहुतीर्होमयति । स्वशरीरे यज्ञं परिवर्तयामीति । चत्वारोऽग्नयस्ते किंभागधेयाः चत्वारो अग्नयः । द्वे आहवनीये । एका दक्षिणाऽग्नौ । एका गार्हपत्ये । एकां सर्व प्रायश्चितीये । तत्र सूर्योऽग्निर्नाम सूर्यमण्डलाऽकृतिस्सहस्ररश्मिः परि-

भूत एक ऋषिर्भूत्वा मूर्धनि तिष्ठति । यस्मादुक्तो दर्श-नाऽग्निनस्मि चतुराकृत राहुर्नामा भूत्वा मुखे तिष्ठति । शारीरोऽग्निर्नाम जरा प्रणुदा हविरविस्कन्दति । अर्द्ध-चन्द्राकृतिर्दक्षिणाऽग्निर्भूत्वा हृदये तिष्ठति । तत्र कोष्ठा-ऽग्निरिति । कोष्ठाऽग्निर्नामाऽशित पीतलीढखादितानि सम्यग् व्यष्टंयषयित्वा गार्हपत्यो भूत्वानाभ्यां तिष्ठति । प्रायश्चित्तस्त्वधस्तात्तिर्यक्तिस्रो हिमांशु प्रभाभिः प्रजनन कर्मा ॥

अस्य शारीरयज्ञस्ययूपरशना शोभितस्याऽत्मा यज-मानः । बुद्धिःपत्नी । वेदामहर्त्विजः अहङ्कारोऽध्वर्युः । चित्तं होता । प्राणोब्रह्मणाच्छंसी । अपानः प्रतिप्रस्थाता । व्यानः प्रस्तोता । उदान उद्गाता । समानोमैत्रावरुणः । शरीरंवेदिः । नासिकोत्तरवेदिकाऽन्तर्वेदिः । मूर्धाद्रोणकलशः । पादोरथः । दक्षिणहस्तस्त्रुवः । सव्यहस्त आज्यस्थाली । श्रोत्रेआधारौ । चक्षुषी आज्याभागौ । ग्रीवाधारापोता । तन्मात्राणि सदस्याः । महाभूतानि प्रयाजाः । भूतानि (गुणाः अनुयाजाः । जिह्वेडा । दन्तोष्ठौसूक्तवाकः । तालु-शंयोर्वाकः । स्मृतिर्दयाक्षान्तिरहिंसा पत्नीसंयाजाः । ओङ्कारोयूपः । आशारशना । मनोरथः कामपशुः । केशा-दर्भाः । बुद्धीन्द्रियाणि यज्ञपात्राणि । कर्मेन्द्रियाणि हवींषि । अहिंसा इष्टयः । त्यागोदक्षिणा । अवभृथं मर-णात् । सर्वाह्यस्मिन् देवताशरीरेऽधि समाहिताः ।

भोजन विधि ।

शुद्ध वस्त्र धारण कर, आसन पर जलपात्र सहित बैठ *आचमन करे पश्चात् प्रादेशमात्र जल से चतुःकोण† मंडल बनावे, गायत्री या प्रणव वा "अनेतन्मंडलेति" को उच्चारण करता रहे, अनन्तर पात्र रक्खे उस पर भोजन सामग्री रख के गायत्री पढ़कर जल से चारों ओर वेष्टन करे अर्थात् चारों ओर जल छोड़े पश्चात् अन्न की स्तुति करे। यहां इच्छानुसार पुरुष सूक्त वा अन्य जो समझे पाठ करे ।

ॐ अन्नपतेऽन्नस्य नोदेह्यनमीवस्य शुष्मिणः । प्रप्र-दातारं तारिषऊर्जं नो धेहि द्विपदेचतुष्पदे । यास्त्वोषध-यस्सोमराज्ञीर्बह्वीश्शत विचक्षणाः । बृहस्पति प्रसूतास्ता-नोमुञ्चन्त्वंहसः ॥ अन्नं न निन्द्यात् । तद्व्रतम् । प्राणो-वाऽन्नम् । शरीर मन्नादम् । प्राणेशरीरं प्रतिष्ठितम् । शरीरे प्राणः प्रतिष्ठितः । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । सय एतदन्न मन्ने तिष्ठिनं वेद प्रतितिष्ठति । अन्नवानन्नादो भवति । महान् भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन ॥

---

* भोजनं हवनं दानमुपहारः प्रतिग्रहः । बहिर्जानु न कार्याणि तद्वदाचमनं स्मृतम् । (बौधायनः ।)

† यथाचक्रायुधो विष्णुस्त्रैलोक्यं परिरक्षति । एक मण्डल भस्मै तत्सर्वभूतानि रक्षति ॥ नीवार चूर्णैर्गोमृदा भस्मनोदकेन वा मण्डलं कुर्यात् ॥

महान्कीर्त्या ॥ अन्नं न परिचक्षीत । तद्व्रतम् । आपो-वाऽन्नम् । ज्योति रन्नादम् । अप्सुज्योतिः प्रतिष्ठितम् । ज्योतिष्यापः प्रतिष्ठिताः । तदे तदन्नमन्ने प्रतिष्ठि-तम् । स य एव दन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेदप्रतितिष्ठति अन्न वनन्नादोभवति । महान्भवति । प्रजया पशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान्कीर्त्या ॥ अन्नं बहुकुर्वीत । तद्व्रतम् । पृथिवीवा-न्नम् । आकाशोऽन्नादः । पृथिव्यामाकाशः प्रतिष्ठितः । आकाशे पृथिवी प्रतिष्ठिता । तदेतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् । स य एतदन्नमन्ने प्रतिष्ठितम् वेद प्रतितिष्ठति अन्नवा-नन्नादोभवति । महान्भवति । प्रजयापशुभिर्ब्रह्मवर्चसेन महान्कीर्त्या ॥

इन ऋचाओं से स्तुति कर पुनः गायत्री से वा "सत्यन्त्वर्त्तेनपरिषिञ्चामि" ।

इससे अन्न का प्रोक्षण करे (मार्जन) पश्चात् आगे के मंत्र से अन्न स्पर्श करे। यथा

ओ३म् तेजोसि शुक्रमस्य मृतमसि धामनामसि । प्रिय-न्देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि ।

पुनः आत्म अग्नि का ध्यान करे ।

ओ३म् अग्नि रस्मिजन्मनाजातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृत-म्मआसन् अर्कस्त्रिधातूरजसोविमानो जस्रो घर्मोहविर-स्मिनाम् ।

पश्चात् तीन बलिपात्र के दहिनी ओर देवे।

ॐ भूपतयेस्वाहानमः। ॐ भुवनपतयेस्वाहानमः। ॐ भूतानांपतयेस्वाहानमः॥

अनन्तर हाथ में जल ले आपोशन करे अर्थात् मंत्र बोलता हुआ वाम हाथ को पात्र में लगा के आचमन करे। यथा—

* अन्नं ब्रह्मरसोविष्णु र्भोक्ता देवोमहेश्वरः।
एवं ध्यात्वाद्विजो भुङ्क्तेसोऽन्नदोषैर्नलिप्यते॥
ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहाया विश्वतोमुखः।
त्वं यज्ञस्त्वं ब्रह्मात्वं रुद्रस्त्वं विष्णुस्त्वं वषटकार आपो ज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भवस्स्वरोम्॥

इससे आचमन कर बदरीफल प्रमाण घृत शक्कर दूध युक्त अभाव में केवल अन्न ही लवण रहित पंचप्राणाहुती मौन होकर करे।

ॐ प्राणाय स्वाहा ॐ अपानाय स्वाहा ॐ व्यानाय स्वाहा ॐ उदानाय स्वाहा ॐ समानाय स्वाहा।

अनन्तर नामांगुलि से नेत्र में जल लगा लेवे या दहिने हाथ से आचमन करें पुनः यथेष्ट भोजन मौन होकर करे या ईश्वर के नामों से युक्त बोलता रहे। भोजन के अनन्तर पुनः आचमन करे यही आपोशन है पश्चात् हाथ पाव शुद्ध कर सावधानी से बैठ आचमन करे और उन्हीं गीले हाथों के

---

* ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हवि० इत्यादि भी आपोशन में कहते हैं। ज्ञानियों का प्रायः यही है।

हथोलियों से नेत्रों में धीरे २ मर्दन करे। इससे नेत्र में तरावट पहुंचती है वैद्यक का भी सम्मति है और यह बोलना रहे ।

शर्यातिं च सुकन्यां च च्यवनं शक्र मश्विनौ ।
भोजनान्ते स्मरेन्नित्यं तस्य चक्षुर्न नश्यति ॥

पश्चात् उदर पर हाथ फेरे और यह कहे ।

अगस्त्यं वैनतेयं च शनिं च बड़वानलम् ।
अन्नस्य परिणामार्थं स्मरेद्भीमं च पंचमम् ॥
आतापी भक्षितोयेन वातापी च निपातितः ।
समुद्रः शोषितोयेन समेऽगस्त्यः प्रसीदतु ॥

पश्चात् साधारण लघु प्राणायाम करके तुलसीदलादि मुख शुध्यर्थ भक्षण कर शतपाद् गमन करके वाम कुक्षि से लेट जावे। ऐसा क्रम है। मध्यह्नाकाल की संध्या करना हो तो करके पश्चात् भोजन करे और भोजन के पश्चात् भी म० सं० हो सकती है परन्तु ब्रह्मयज्ञ और तर्पण भोजन के पहिले ही होना चाहिये। योगमार्गी का यहां प्राणायाम है ।

* ताम्बूलं विधवास्त्रीणां यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ।
तपस्विनां च विप्रेन्द्र सर्वपुण्य हरंस्मृतम् ॥

(वाचस्पतौ ।)

पुनः दूसरी समय अध्ययन कर समिधादि लेना हो तो जाके ले आवे पश्चात् शौचादि से निवृत्त हो स्नान कर सायं संध्या कर अग्निहोत्र करे अनंतर गुरु की आज्ञा से सेवाकर

---

* असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् । उपवासो विनश्येत दिवा स्वापाच्च मैथुनात् । (भविष्ये ।)

भोजन करे पुनः गुरु की आज्ञा से सेवा वा ग्रंथावलोकन कर शयन करे (योगमार्गी सायं सं० के अनन्तर प्राणायाम करे।

शयन प्रकार:।

प्राक्शिराः शयने विन्द्याद्धनमायुश्च दक्षिणे।
पश्चिमे प्रबलाचिन्ता हानिर्मृत्यु रथोत्तरे॥
रात्रि सूक्तं जपन्स्मृत्वा देवांश्च सुख शायिनः।
नमस्कृत्वाव्ययं विष्णुं समाधिस्थं स्वपेन्निशि॥

(मार्कंण्डेयः।)

पूर्व की ओर शिर कर सोने से धन की वृद्धि, दक्षिण की ओर आयु की वृद्धि, पश्चिम की ओर विशेष चिंता और उत्तर की तरफ शिर करने से हानि, मृत्यु होती है इससे पूर्व या दक्षिण शिर करके सोना चाहिये। रात्रि सूक्त का जपकर शयन मे सुख के देनेवाले देवता तथा ऋषियों को नमस्कार कर विष्णु भगवान् को स्मरण करता हुआ सो जावे। सोते समय हाथ पांव धोकर सोवै।

आरात्रि पार्थिव ꣳ रजः पितुरप्रायिधामभिः दिवः सदाꣳसि बृहतीवितिष्ठस ऽआत्वेषंवर्ततेतमः॥ उषस्तच्चित्रमाभरास्मभ्यंवाजिनीवति। येनतोकञ्चतनयञ्च धामहे।

(रात्रिसूक्तम्।)

अगस्तिर्माधवश्चैव मुचुकुन्दोमहाबलः।
कपिलो मुनिरास्तीकः पञ्चैते सुख शायिनः॥

शिव विष्णु देवी आदि देवताओं को स्मरण करे। योगमार्गी सायंकाल का प्राणायाम कर सावधानी से ध्यानावस्थित

रहे पश्चात् कुछ काल के विराम करले पुनः अर्द्धरात्रि की संधि में प्राणायाम कर कुछ काल ध्यानावस्थित हो नाद को सुनता हुआ वाम कुक्षि से दहिने स्वर को चला कर सो जावे परन्तु असावधान निद्रा न ले जब जागृत हो प्रणवही का अनुसन्धान करे ।

वीर्यपात प्रायश्चित्त ।

स्वप्ने सिक्त्वा ब्रह्मचारी द्विजः शुक्रमकामतः
स्नात्वार्कमर्चयित्वा त्रिः पुनर्मामितृचं जपेत् ॥
(मनुः ।)

विना विषय की इच्छा से यदि सोते हुए में ब्रह्मचारी का वीर्यपात हो जावे तो स्नान करके सूर्य का पूजन करे और तीन वार "पुनःमैत्विंद्रियं" इस ऋचा का पाठ करे यही प्रायश्चित है ।*
मंत्र अथर्वण० स० काण्डे ।

---

* बहु धर्म लोपे प्रायश्चित्त विधाने शौनकः । तं बोधिया जपेन्मन्त्रं लक्षं चैव शिवालये ॥ ब्रह्मचारी स्वधर्मं च न्यूनं चेत्पूर्ण मेवतत् ॥ मंत्र । तं बोधियान हरस्याशविष्टं घृतं प्रत्नवत्परितं क्षयध्ये । सनोवक्षदनिमानः सुब्रह्मेंद्रो विश्वान्यति दुर्गहाणि ॥ लिंग पुराणे । दिवास्कन्दस्य विप्रस्य प्रायश्चित्तं विधीयते । त्रिरात्रमुपवासश्च प्राणायाम शतं तथा ॥ रात्रौस्कन्नः शुचिः स्नात्वा द्वादशैवतु धारणाः । प्राणायामेन शुद्धात्मा विरजा जायते द्विजाः ॥

पुनर्मैत्विन्द्रियं पुनरात्मा द्रविणं ब्राह्मणं च पुनरग्नयो धिष्णया यथास्थाम कल्पयन्तामिहैव।

इसी मंत्र से ब्रह्मचारी जीर्ण दण्ड को त्याग करके नूतन धारण करै॥

ब्रह्मचारी तु योगच्छेत्स्त्रियं काम प्रपीड़ितः।
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्र मथवैकं तु यन्त्रितः॥

(संवर्त्तसं०।)

ब्रह्मचारी कामातुर होके यदि स्त्री के साथ में आलिंगन करे अर्थात् विषय करे तो कृच्छ्र प्रजापति व्रत करे अथवा एकाकी इन्द्रियों को वश में करके नियमपूर्वक बहुत काल तक फिरै।

त्र्यहं सायं त्र्यहं प्रातस्त्र्यहं भुंक्ते त्वयाचितं।
त्र्यहं परं च नाश्नीयात्प्राजापत्यो विधिःस्मृतः॥

(प्राजापत्यव्रत। अत्रिः।)

तीन दिन सायंकाल को, तीन दिन प्रातःकाल, तीन दिन बिना मांगे जो मिले भोजन करे और तीन दिन कुछ भी न खाय यह प्राजापत्य की विधि है।

सायं द्वात्रिंशतिर्ग्रासाः प्रातः षड्विंशति स्तथा।
आयाचिते चतुर्विंशं परं चानशनं स्मृतम्॥
कुक्कुटाण्डे प्रमाणं च यावांश्च प्राविशेन्मुखम्।
एतं ग्रासं विजानीयाच्छुद्ध्यर्थं कायशोधनम्॥
हविष्यं चान्नमश्नीयाद्यथा रात्रौ तथा दिवा।

(पाराशरः।)

सायं बत्तीस ग्रास, सवेरे छब्बीस, अयाचित में चौबीस ग्रास भोजन करे और पश्चात् कुछ न खावे। मुर्गे के अंडे के बराबर ग्रास अथवा मुख में जो समा सके ऐसा ग्रास शरीर के शुद्धि के निमित्त जानिये। परन्तु वह ग्रास (भोजन) हविष्यान्न (जौ, चांवल, मूङ्ग या दूध का मावा या सत्तू) का हो चाहे रात्रि में करे चाहे दिन में भोजन करे।

त्र्यहमुष्णं पिवेद्वारि त्र्यहमुष्णं पयः पिवेत् ॥
त्र्यहमुष्णं पिवेत्सर्पिर्वायुभक्षोदिनत्रयं ।
षट्पलं तु पिवेदंभस्त्रिपलं तु पयः पिवेत् ।
पलमेकं पिवेत्सर्पिः तप्तकृच्छ्रं विधीयते ॥

तीन दिन गर्म जल ६ पल (चार रुपये भर का पल होता है) पीवे, तीन दिन गर्म दूध तीन पल, तीन दिन गर्म घी एक पल पीवे और तीन दिन हवा पी कर रहे यह तप्तकृच्छ्र की विधि है ॥

एकः शयीत सर्वत्र न रेतः स्कन्दयेत्क्वचित् ।
कामाद्धि स्कन्दयन् रेतो हिनस्ति व्रत मात्मनः ॥
(मनुः ।)

सदा अकेला सोवे इच्छा से वीर्य को न पात करे क्योंकि इच्छा से वीर्य गिराता हुआ ब्रह्मचारी अपने व्रत का नाश करता है।

रेतोनावकिरेज्जातु ब्रह्मव्रतधरः स्वयम् ।
अवकीर्णेऽवगाह्याप्सु यतासुस्त्रिपदीं जपेत् ॥
(भागवते ।)

व्रत धारण करनेवाला ब्रह्मचारी जान कर कभी भी वीर्य-पात न करे यदि आपसे आप वीर्यपात हो जावे तो गहरे जल में स्नान करके प्राणायाम कर गायत्री का जप करे। कहीं कहीं वीर्यपात में सहस्र जप कहा है।

ब्रह्मचारीतु यः स्कन्देत कामतः शुक्रमात्मनः ।
अवकीर्णी व्रतं कुर्यात्स्नात्वा शुद्धेदकामतः ॥

(संवर्त्तः ।)

कामातुर होके यदि ब्रह्मचारी वीर्यपात करे तो अवकीर्ण व्रत करने से शुद्ध होता है और अकस्मात् वीर्यपात हो जावे तो स्नान करने से शुद्ध होता है।

मुच्यते ह्यवकीर्णी तु ब्राह्मणानुमते स्थितः ।
सप्तरात्रमकृत्वातु भैक्षचर्याऽग्नि पूजनम् ॥
रेतसश्च समुत्सर्गे प्रायश्चित्तं समाचरेत् ।
ओंकार पूर्विकाभिस्तु महाव्याहृतिभिः सदा ॥
संवत्सरन्तु भुञ्जानो नक्तम्भिक्षाशनः शुचिः ।
सावित्रीं च जपेन्नित्यं सत्वरः क्रोधवर्जितः ॥
नदीतीरेषु तीर्थेषु तस्मात्पापाद्विमुच्यते ॥

(कूर्मपुराणे ।)

यदि ब्रह्मचारी अपनी इच्छा से वीर्यपात करे तो सात दिन तक ब्राह्मणों की आज्ञा पालन करता हुआ सेवा में रहे, न तो भिक्षा मांगे और न अग्निहोत्र करे पश्चात् यह प्राय-श्चित्त करे कि ओंकार व्याहृतिपूर्वक गायत्री का जप क्रोध-रहित शुद्ध बृत्ति से एक वर्ष तक नदी के तटपर अथवा किसी तीर्थ में रात्रि में एक बार भोजन करता हुआ नित्य करे ॥

अवकीर्णीतु काणेन गर्दभेन चतुष्पथे ।
पाकयज्ञ विधानेन यजेत निर्ऋतिं निशि ॥
हुत्वाग्नौ विधिवद्धोमानन्तश्च समेत्यृचा ।
वातेन्द्र गुरुवह्नीनां जुहुयात्सर्पिषाहुतीः ॥

(मनु० ।)

अवकीर्णी ने काने गधे से रात्रि के समय में चौराहे पर पाक यज्ञ के विधान से निर्ऋति नाम देवता का यजन करे। और निर्ऋति के लिये विधिवत् होम करे पश्चात् "समासिञ्चन्तु मरुतः" इस ऋचा से मरुत, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि के लिए घी से आहुति देवे ।

सं मा सिञ्चन्तु मरुतः संपूषा सं बृहस्पतिः संमाय-मग्निः सिञ्चन्तु प्रजया च धनेन च दीर्घमायुः कृणोतु मे

(मंत्र अथर्व० स० का० ।)

मारुतं पुरुहूतं च गुरुं पावक मेवच ।
चतुरोव्रतिनोऽभ्येति ब्राह्मं तेजोऽवकीर्णिनः ॥
एतस्मिन्नेनसि प्राप्ते वसित्वा गर्दभाजिनम् ।
सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं स्वकर्म परिकीर्तयन् ॥
तेभ्योलब्धेन भैक्षेण वर्तयन्नेक कालिकम् ।
उपस्पृशं स्त्रिषवणं त्वब्देन स विशुद्ध्यति ॥

ब्रह्मचारी का नियमपूर्वक वेद पढ़ने से उत्पन्न हुआ जो तेज वह अपकीर्णी होने से वायु, इन्द्र, बृहस्पति और अग्नि में चला जाता है इसीसे उनके लिए घी की आहुतियां होमें। इस तरह अपकीर्ण नाम पाप के उत्पन्न होने पर गदर्भ के

चमड़े को ओढ़कर अपने पापों को कहता हुआ सात घरों में भिक्षा मांगे । उन सात घरों से भिक्षा मिली हुई से एक काल आहार करता हुआ तीनों काल स्नान करे इस प्रकार रहने से वह अवकीर्णी साल भर में शुद्ध होता है । मनु ने स्त्री के संग भोग करने पर यह प्रायश्चित्त कहा है

ब्रह्मचारी स्त्रियङ्गच्छेत्कथञ्चित्काम मोहितः ।
सप्तागाराञ्चरेद्भैक्षं वसित्वा गर्दभाजिनम् ॥
उपस्पृशेत्त्रिषवणं स्वपापम्परिकीर्तयन् ।
संवत्सरेण चैकेन तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥

(कूर्म पुराणे ।)

कदाचित् ब्रह्मचारी काम से मोहित होके स्त्री से गमन करे तो गदहे का चमड़ा ओढ़े हुए सात घरों की भिक्षा से निर्वाह करे और अपने पाप को कहता हुआ तीनों काल स्नान करे इस प्रकार एक वर्ष पर्यंत करने से वह उस पाप से छूट जाता है ॥

यह वीर्यपात होने के कारण में जो ब्रह्मचारी को विशेष रूप से दोष लगाया है उसका कारण यह है कि ब्रह्मचर्य जो वस्तु है वह "वीर्य रक्षा है" हर एक प्रकार से इसकी रक्षा करनी चाहिये जिसमें किसी प्रकार किसी समय में इसका पात न हो ।

सर्वत्र मैथुन त्यागः ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते ।

सब जगहों से चित्त को विषयों से रोकना अर्थात् आठ प्रकार का, स्त्री का ख्याल करना, हंसी, दिल्लगी करना, चूंबना, आलिङ्गन आदि जो मैथुन कहा उसको सदैव त्याग

करना इसीको ब्रह्मचर्य कहते हैं और पातंजलि महर्षि ने भी कहा है कि

ब्रह्मचर्यं प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।

उपस्थ (लिंग) इन्द्रिय को रोकना तथा विद्या का पढ़ना जो "ब्रह्मचर्य" उससे वीर्य का स्तंभन अर्थात् ऊर्ध्वरेता होना यही लाभ (फायदा) है । इससे उसको सब प्रकार की सामर्थ्य प्राप्त होती है, अजर अमर होता है

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दु धारणात् ।

क्योंकि बिन्दु के गिरने से मरण और ऊर्ध्वरेता होने से अमर होता है । इसी वीर्य प्रभाव से जो ब्रह्मचारी तीनों लोक की रक्षा करता है (जो पहिले अथर्वण वेद में कह आये हैं) समग्र देवता उससे प्रसन्न रहते हैं सिद्धियां हस्तगत रहती हैं ।

यइमां देवोमेखला माबवन्धयः सननाह यउनो युयोज । यस्य देवस्य प्रशिषा चरामः सपारमिच्छात् स उनोविमुञ्चात् १ आहुतास्यभिहुत ऋषीणामध्यायुधम् । पूर्वाव्रतस्य प्राश्नती वीरघ्नी भवमेखले २ मृत्योरहं ब्रह्मचारी यदस्मि निर्याचन् भूतात् पुरुषं यमाय । तमहं ब्रह्मणा तपसा श्रमेणानयैनं मेखलया सिनामि ३ श्रद्धया दुहिता तपसोधिजाता स्वसऋषीणां भूत कृतां बभूव सानो मेखले मतिमाधेहि मेधामथोनोधेहि तप इन्द्रियं च ४ यंत्वा पूर्वे भूतकृत ऋषयः परिवेधिरे । सात्वं परिष्वजस्व मां दीर्घायुत्वाय मेखले ५ अथर्वण षष्ठं काण्डे ।

* इति पञ्चर्चेन अभिचार कर्मणि दीक्षाया मेखलां संपात्य अभिमन्त्र्य बन्धीयात् । अत्र 'आहुतासि' इत्यनया तत्रैव कर्मणि मेखलाया ग्रन्थिम् आलिम्पेत् ।

अयं वज्रस्तर्पयतामृतस्यावास्य राष्ट्रमयहन्तु जीवितम् ।
शृणातु ग्रीवः प्रशृणातूष्णिहा वृत्रस्यैव शचीपतिः ॥

इति तृचेन अभिचार कर्मणि दीक्षायां दण्डं संपात्य अभिमन्त्र्य बध्नीयात् तत्रैव कर्मणि अनेन तृचेन अन्नम् अभिमन्त्र्य कर्ता भुञ्जीत ।

ज्ञानमार्गी नैष्ठिक मठस्थ ब्रह्मचर्य

अर्थात्

बहूदक सन्यास ।

यह ब्रह्मचर्य जो प्रकाश चैतन्यादि नामों से चार प्रकार का कहा जाता है वह चिरकाल से सनातनी है किन्तु चैतन्यादि नाम पूज्यपाद श्री शङ्कराचार्य महाराज से प्रचलित हुआ है ।

जिस समय में बौद्ध मत की प्रबलता से कापालिक, चक्रांकित वीर वैष्णवादि नाना प्रकार के मतमतांतर फैल गये थे

---

* मेखलामजिनं दण्ड मुपवीतं कमण्डलुम् । अप्सु प्रास्य विनष्टानि गृहीत्वाऽन्यानि मन्त्रवत् ॥ (मनुः ।) अजिनंमेखलादण्डौ भैक्षचर्याव्रतानि च । निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कार कर्मणि ॥ तथाच (पाराशरः ।)

जिससे वेदाऽनुयायी वर्णाश्रम के धर्म पर हानि पहुंची थी उसके संभालने के निमित्त श्री शंकरजी दक्षिण दिशा के केरल देश में विद्याधिराज के पुत्र शिवगुरु के यहां युधिष्ठिर के २६३१ शाके में वैशाख शुक्ल ५ को अवतार धारण कर इन सब वेदविरुद्ध मतवालों को परास्त करके वेद धर्मशास्त्र के कहे हुए धर्मों का प्रतिपादन किया, उस समय ब्रह्मचर्याश्रम और वानप्रस्थ शास्त्र के अनुसार नहीं दिखाई देते थे अर्थात् दीनदशा देखकर इन दोनों आश्रम को पुष्ट करने के वास्ते जो उस समय में जहां कहीं नैष्ठिक ब्रह्मचारी तीन मठवाले (सुमेरु मठ, परमात्मा मठ, शुद्ध शास्त्र मठ) विचर रहे थे उनको तलाश किया और जो व्रतबंध के अनंतर दंड मेखलादि त्याग कर योंही विवाहरहित अनाश्रमी हो रहे थे उनको संस्कार कर वेद के अनुसार महावाक्य का उपदेश कर प्रकाशादि* की उपाधि दिया ।

वह ऐसा कि, ऋग्वेद का महावाक्य "प्रज्ञानंब्रह्म" विशेष करके उत्कृष्ट जो ज्ञान वह ब्रह्म है। परन्तु वह ब्रह्म कैसा है कि

"आदित्यवर्णं यस्य भासा सर्वमिदं विभाति" (श्रुतिः)

---

* बृहन्नारदीये । दीर्घकालं ब्रह्मचर्यं–वानप्रस्थाश्रमस्तथा । कलि में विशेष कालतक ब्रह्मचर्य तथा वानप्रस्थ आश्रम नहीं चल सकता एतदर्थ महावाक्य के उपदेश द्वारा ब्रह्मचर्य कल्पना किया क्योंकि ब्रह्मचर्यं चरन्तीति श्रुतेः । तथाच – तत्वज्ञानं प्राप्ति निमित्त्यर्थं ब्रह्मचर्यस्य विधि दर्शनात् ।

वह सूर्य के समान प्रकाशवाला, जिसके प्रकाश करके यह समग्र जगत प्रकाशित है । प्रकाशमय होने से इस वेद के महावाक्य वाले को "प्रकाश" पदवी दी गई और ज्योतिर्मय, निराकार, निर्गुण, साक्षीमात्र, अद्वितीय ब्रह्म है इसको योग द्वारा जानो, इस प्रकार अद्वैत पद का बोध दिया और कहा ऐसा ही उपदेश करते हुए निर्लेपता से विचरो । प्रकाश का लक्षण भी समझाया ।

स्वयं ज्योतिर्विजानाति योग युक्ति विशारदः ।
तत्वज्ञान प्रकाशेन तेन प्रोक्तः प्रकाशकः ॥

योग द्वारा तत्वज्ञान से जो ब्रह्मचारी अपने स्वरूप को जानता है वह प्रकाश ब्रह्मचारी है । इसकी पूर्व दिशा, * इस दिशा में गोवर्द्धन मठ है ।

यजुर्वेद का महावाक्य "अहंब्रह्मास्मि" मैं ब्रह्म हूं । मैं ब्रह्म हूं ऐसा स्फुरण होना ही संसार का कारण चेतनकर्ता सिद्ध होता है "तस्मात्तत्सर्वम भवत्" चिन्मात्र होने से इस वेद के महावाक्य वाले को "चेतन्य" पदवी दी गई और उपासना रूप से प्राप्त होके अहंभावना से अर्थात् मेरे से भिन्न दूसरा नहीं ऐसी उपासना करो इस प्रकार अद्वैत पद का बोध दिया और यही उपदेश करते हुए विचरो ।

चिन्मात्रचैत्य रहित मनंत मजरं शिवम् ।
योजानाति सवै विद्वान चैतन्यं स विधीयते ॥९०॥

---

* ऋग्वेदी पूर्वतः स्थाप्यौ दक्षिणेतु यजुर्विदो । सामगौ पश्चिमे तद्वदुत्तरेणत्वथर्वणो ॥ मात्स्ये ॥

जो नैष्ठिक ब्रह्मचारी चिन्मात्र चैतन्यता रहित अजर अनन्त शिव को जानता है वही विद्वान है और उसी को चैतन्य ब्रह्मचारी कहते हैं। इसका दक्षिण दिशा और इस दिशा में शृङ्गेरी मठ स्थापित है।

सामवेद महावाक्य "तत्वमसि" वह तू है। वह तू है ऐसा सिद्ध होने से कोई रूप प्रतीत होता है इससे इस वेद के महावाक्य वाले को "स्वरूप" पदवी दी गई। वेदाऽध्ययन करना और तदनुसार यज्ञादि कर्म निष्काम रूप से अन्तः-करण शुध्यर्थ तथा लोकोपकारार्थ करते हुए अन्तःकरण में ज्ञान की पुष्टता से अपने स्वरूप का लक्ष्य रखना ऐसा अद्वैत पद का बोध दिया और कहा कि यही उपदेश करते हुए विचरो।

स्वस्वरूपं विजानाति स्वधर्म परिपालकः ।
स्वाऽनन्दे क्रीडितो नित्यं स्वरूपोवटुरुच्यते ॥१०॥

अपने आत्मा के स्वरूप को जानता है और अपने आश्रम के धर्म (ब्रह्मचर्य धर्म) का पालन करता है और अपने आत्मा के ध्यान में नित्य मग्न रहता है उसको स्वरूप ब्रह्मचारी कहते हैं। इसकी पश्चिम दिशा और इस दिशा में शारदा मठ स्थापित है। जो कर्म का उपदेश किया वह क्यों ? ज्ञान में कम का क्या प्रयोजन है? इस पर यह व्याख्या है कि यह जीव कर्मरूप है कर्म ही से यह बंधन में पड़ा है इससे उसको कर्म ही प्रिय है जब इसको क्रम २ से कर्म करते २ शुद्धता हो तब ज्ञान की प्राप्ति हो कर स्वरूप को जाने, परन्तु कर्म दो प्रकार के होते हैं एक तो बंधन रूप, दूसरा मोक्ष का देनेवाला है, जो ज्ञानमार्गी कर्म उनको उपदेश किया। यथा—"नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितं" प्रायः ब्रह्मयज्ञ में स्थित रहता है। और

कर्मण्यय कर्मयः पश्येद् कर्मणि च कर्मयः।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्न कर्मकृत्॥

शरीर प्राणेंद्रियांतःकरण के व्यापार कर्म में आत्मा को जो कर्म रहित जानता है और अकर्म रूप ब्रह्म में जैसा संसार कल्पित है ऐसा जो जानता है वही ज्ञानी वही समग्र कर्मों का करनेवाला है। तथाच श्रुतिः

तदेत्सत्यं मन्त्रेषु कर्माणि कवयो यान्य पश्यन्।

ऋग्वेदादि नामवाले मंत्रों में जो अग्नि होत्रादि कर्म हैं और मन्त्रों करके ही प्रकाशित हुए जिन कर्मों को वशिष्ठादि कवि (बुद्धिमान तप स्वरूप) देखते भये. ऐसा जो कर्मों का समुदाय सो सत्य है। इसको इच्छारहित करना ज्ञान का अधिकारी है। और भी श्रुतिः

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतꣳसमाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे॥

वेदाध्ययन, और संध्या गायत्री का जपादि और अग्नि-होत्रादि कर्म इच्छारहित (निष्काम) करते हुए सौ वर्ष या जो कुछ आयु हो जीने की इच्छा करो इस प्रकार का हेतु न होगा। अर्थात् जब तक शुद्ध ज्ञान की प्राप्ति न हो तब तक कर्म करता रहे इससे उसको ज्ञान में हानि न होगी।

अथर्वण वेद का महावाक्य "अयमात्माब्रह्म" यह जो "जीव" नाम करके दिखाई दे रहा है वह आत्माब्रह्म है। जब इस जीव का भ्रम ज्ञान द्वारा निवृत हो विकार रहित होता है तब यह आनन्दमय हो जाता है अर्थात् देहेन्द्रिय इत्या-दिकों के संयोग से भ्रम है वास्तविक में वह आनन्दमय ब्रह्म

है, इससे इस वेद के महावाक्यवाले के। "आनन्द" पदवी दी गई। वेदांतशास्त्र में प्रीति रखना और संसार स्वप्नवत् भ्रम मात्र है तू "जीव" इससे निराला शुद्ध परमानन्द स्वरूप है ऐसा योगमार्ग द्वारा लक्ष्य रखना, इस प्रकार अद्वैत पद का बोध दिया और कहा कि यही उपदेश करते हुए संसार में सर्वत्र असंग होके विचरना॥

लक्षण ।

सत्यं ज्ञान मनंतं यः नित्यं ध्यायेत तत्ववित् ।
स्वानन्दे रमतेचैव आनन्दा परिकीर्तितः ॥

जो तत्वज्ञानी बालब्रह्मचारी रहकर सच्चिदानन्द अनन्त ब्रह्म का सर्वदा ध्यान करता है और अपने आत्मा के आनन्द में मग्न रहता है उसको आनन्द ब्रह्मचारी कहते हैं। इसकी उत्तर दिशा, इस दिशा में आचार्य से स्थापित ज्योतिर्मठ है इस क्रम से चार प्रकार का ब्रह्मचर्य, जो शास्त्रों में चार प्रकार का कहा है (जिसकी व्याख्या लिख चुका हूं) उसकी जगह में नाम बदल कर ज्ञान मार्ग की रीति पर स्थापना किया क्योंकि ब्रह्मचर्य ही ब्रह्मलोक का मुख्य साधन है

तद्य एवैतं ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति तेषामेवैष ब्रह्मलोकस्तेषाꣳसर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति ।

(छा० श्रु० ।)

जो इस ब्रह्मलोक को स्त्री और विषयन की तृष्णा के त्याग रूप ब्रह्मचर्य से आचार्य के उपदेश द्वारा जानते हैं उन्हीं को ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है इससे ब्रह्म के जाननेवालों को यह ब्रह्मचर्य परमसाधन है। इसमें जो महावाक्य का उपदेश

किया वह क्यों ? इसका यह कारण कि जब मेखलादि त्याग हो गया, विवाह भी न हुआ या विवाह होकर स्त्री का देहान्त हो गया पुनः विवाह भी न हो सका, तो इनको किसी आश्रम में जाना चाहिये "श्रुतिः—अनाश्रमी न तिष्ठेत्" अनाश्रमी होके न रहना । तथाच दक्षः ।

अनाश्रमी न तिष्ठेत दिनमेकमपि द्विजः ।
आश्रमेन विना तिष्ठन् प्रायश्चित्तीयते हिसः ॥
जपे होमे तथा दाने स्वाध्याये चरतः सदा ।
नासौफल मवाप्नोति कुर्वाणोप्याश्रमाद्बहिः ॥

द्विजाती एक दिन भी आश्रम से रहित न रहे क्योंकि आश्रम के बिना रहता हुआ प्रायश्चित के योग्य होना है ; आश्रम के रहित जप, दान और वेद पाठ में तत्पर कर्म को करता हुआ भी फल को नहीं प्राप्त होता । इससे अनाश्रमी न रहना चाहिये, फिर किस आश्रम को स्वीकार करे ? इस पर यह है कि, सन्यास के दो भाग हैं एक पूर्व भाग दूसरा पर है । पूर्वभाग में कुटीचक, बहूदक और पर भाग में हंस, परमहंस है । जब पूर्णरीति से वैराग्ययुक्त ज्ञान प्राप्त हो या वृद्धावस्था हो तो पर भाग को स्वीकार करे, नहीं पूर्वभाग में शास्त्रानुसार ज्ञान मार्ग का अवलम्बी हो सुखपूर्वक विचरे । पुनः ब्रह्मचारी नहीं हो सकता है । दक्षः ।

यो गृहाश्रममास्थाय ब्रह्मचारी भवेत्पुनः ।
न यतिर्नवनस्थश्च स सर्वाश्रम वर्जितः ॥

जो गृहस्थी होकर स्त्री के रहते हुए या मरने पर वानप्रस्थ अथवा सन्यासी न होकर यदि ब्रह्मचारी हो तो वह सब आश्रमों से रहित है अर्थात् किसी में नहीं क्योंकि

अथाश्रमानुलोम्यंहि प्रातिलोम्यं न विद्यते ।
प्रातिलोम्येन यो याति न तस्मात्पाप कृत्तमः ॥

ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ ये तीनों आश्रम का क्रम है विपरीत नहीं अर्थात् ब्रह्मचर्य से गृहस्थी होता है किन्तु गृहस्थ होकर ब्रह्मचारी नहीं, इसी तरह गृहस्थ वानप्रस्थ होता है परन्तु वानप्रस्थ होकर गृहस्थी नहीं होता है और जो कोई विपरीत आचरण करता है उससे बढ़कर कोई पाप करनेवाला नहीं है।

इससे उसको महाराज शंकर ने सन्यास के पूर्व भाग का बहूदक नाम गणना कर, शिखासूत्र युक्त जान, प्रेषोच्चारण न करके महावाक्य का उपदेश किया और चैतन्यादि (मठाम्नाय में है) नाम से ब्रह्मचर्य भी रक्खा और शिखासूत्र रहने से कर्मकाण्ड का भी अधिकारी जान वानप्रस्थ की जगह में भी सिद्ध किया। यह भी लक्ष्य रहे कि वही सन्यास है कि जिसको श्रीकृष्ण भगवान ने श्रेष्ठ माना है।

सन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगोविशिष्यते ॥गीतायाः॥

सन्यास अर्थात् शिखासूत्र से रहित ज्ञानावलंबी हंस परमहंस और कर्मयोग अर्थात् शिखासूत्रधारी कर्मयुक्त ज्ञानावलम्बी बहूदक सन्यास यह दोनों मुक्तिदाता है तथापि कर्मयोगी अर्थात् अग्निहोत्रादि कर्मयुक्त ज्ञानमार्गी श्रेष्ठ है।

इस प्रकार यह ब्रह्मचर्य कलि में दीर्घकाल तक पुष्ट करने के वास्ते चैतन्यादि नामों से बहूदक सन्यास की जगह पर स्थापन किया है।

स्वपुत्र गृहेषु भिक्षाचर्यां चरन्तः आत्मानं प्रा[illegible]
कुटीचकाः। तथाच "स्वाश्रम धर्मं प्रधानः"।

कुटीचक का यह लक्षण है। अपने कुटुम्ब की से या अन्य से भिक्षावृत्ति से निर्वाह करता हुआ आत्मा में साधन द्वारा प्रीति करे। अपने आश्रम के धर्म को यथार्थ पालन करना॥

* कुटीचकश्शिखायज्ञोपवीती दण्ड कमण्डलु धरः कौपीन कन्था धरः पितृमातृगुर्वाराधन परः पिठर खनित्रशिक्यादि मात्र साधन पर एकत्रान्नादन परश्श्वेतोर्ध्व-पुण्ड्रधारी त्रिदण्डः। सन्योपनिषद्।

बहूदक लक्षणम्।

बहूदकश्शिखादि कन्थाधरस्त्रिपुण्ड्रधारी कुटीचकवत्सर्वसमोऽमधुकरवृत्याष्टकवलाशी।

शिखा यज्ञोपवीतादि गुदड़ी (ठंढ निवृत्त ओढ़ने का वस्त्र) त्रिपुंड्र धारण करके, माधूकरी मांग कर आठ ग्रास से निर्वाह करना, शेष कुटीचक की तरह आचरण करे।

---

* कुटीचकश्चसन्यस्य स्वेस्वेवेश्मनि नित्यशः। भिक्षामादाय भुञ्जीत स्वबन्धूनां गृहेथवा॥ शिखीयज्ञोपवीती-स्यात् त्रिदण्डी सकमण्डलुः। सपवित्रश्च काषायी गायत्रीं च जपेत्सदा। सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात् त्रिपुण्ड्रं त्रिसन्धिषु। शिव लिङ्गार्चनं कुर्याच्छ्रद्धयैव दिने दिने॥ स्कन्दपुराणे॥

अबहूदकस्यद्धिवारं स्नानं, त्रिपुंड्र धारणं, ऋतुद्वय ; माधूकरं, एकशाटी, देवार्चनं, मन्त्र जपाधिकारो अणव जपः श्रवणम्। नारद परि०।

वहूदक को दो वार स्नान, त्रिपुंडू धारण, चार मास पर चौर, माधूकरी से निर्वाह। एक वस्त्र, देवपूजन, गायत्री, पंचाक्षर, प्रणव मंत्र जप करे, वेदांत शास्त्र में प्रीति। तथाच।

बहूदकास्तु त्रिदण्ड कमण्डलु धराः शिखायज्ञोपवीत कौपीन कषाय वेष धारिणः॥ कर्मोपसर्जनीकृत्य ज्ञानाऽभ्यासप्रधानः।

वहूदक ने तीन दण्ड, कमण्डलु, शिखा, यज्ञोपवीत, लंगोट और भगवा वस्त्र धारण करे। कर्मों को त्याग कर ज्ञानमार्ग में प्रीति करे।

*त्रिदण्ड कमण्डलु शिखायज्ञोपवीत काषाय वस्त्र-धारिणः ब्रह्म र्षे गृहेमधुमांसं वर्जयित्वाऽष्टौग्रासन् भैक्षाऽचरणंकृत्वा योगमार्ग मोक्षमेव प्रार्थयन्ते। भिक्षकोपनिषत्। बहूदक ल०।

---

* बहूदकश्च सन्यस्य वन्धु पुत्रादि वर्जितः। सप्तागारांश्चरेद्भैक्षं मेकान्नं परिवर्जयेत्॥ गोवालरज्जु संबद्धं त्रिदण्डं शिक्य मद्भुतम्। पात्रं जल पवित्रं च कौपीनं च कमंडलुम्। आच्छादनं तथा कन्थां पादुकां छत्र मद्भुतम्। पवित्र मजिनं सूचीं पक्षिणी मक्ष सूत्रकम्। योग पट्टं बहिर्वस्त्रं मृत्खनित्रीं कृपाणिकाम्। सर्वाङ्गोद्धूलनं

तीन दंड, कमंडलु (जलपात्र) शिखा, जनेऊ, रं रंगे वस्त्र को धारण किये ब्राह्मणों के घर से मदिरा, मांस रहित भिक्षा को लेके आठ ग्रास से निर्वाह करता हुआ योगाभ्यास द्वारा परमात्मा से मोक्ष की प्रार्थना करे अर्थात् प्राणायाम द्वारा चित्त को स्थैर्य कर समाधि में स्थित हो अद्वैत पद में विचरे ।

वाग्दण्डोऽथ मनोदण्डः कायदण्डस्तथैव च ।
यस्यैते निहिताबुद्धौ त्रिदण्डीति स उच्यते ॥

(मनुः ।)

वाणी का दंड, मन का दंड और शरीर दंड ये तीनों दंड जिसकी बुद्धि में स्थित है वह त्रिदंडी कहा जाता है ।

वाग्दण्डे मौन मातिष्ठेत्कायदण्डेत्वभोजनम् ।
मानसे तु कृते दण्डे प्राणायामो विधीयते ॥

(संन्या० ।)

वाणी का दंड मौन रहे, शरीर का दंड प्रयोजन मात्र फलहार करे, मन का दंड प्राणायाम करे

बहूदकानां हंसानां पाणिपात्रं तथोदकम् ।
कांस्य पात्रं न विद्युक्त मृत्पात्र मिति हि श्रुतिः ॥

(सूत संहितायां ।)

वद्धत त्रिदण्डं चैव धारयेत् । शिखी यज्ञोपवीती च देवताराधने रतः । स्वाध्यायी सर्वदावाच मुत्सृजेत्ध्यान तत्परः । सन्ध्याकालेषु सावित्रीं जपन् कर्म्म समाचरेत् ॥ स्कन्दपराणे ।

बहूदक और हंस का हाथ, उदर ही पात्र है परन्तु कांसे पात्र में न भोजन करे, न पीवे और मृत्मय (मिट्टी) पात्र रखना श्रुति ही का कथन है अर्थात् मृत्तिका का पात्र सबसे श्रेष्ठ है।

चातुर्मास्यंच सर्वेषां वदन्ति ब्रह्मवादिनः।
कुटीचकाश्च हंसाश्च तथैव च बहूदकाः॥
सावित्री मात्र संपन्ना भवेयुर्मोक्षकारणात्।

ब्रह्मज्ञानियों का कहना है कि चातुर्मास्य सब भिक्षुकों को करना चाहिये। कुटीचक, बहूदक और हंस ये केवल सावित्री के जप से ही मोक्ष को प्राप्त होते हैं।

मृतेन्न दहनं कार्य्यं परहंसस्य सर्वदा।
कर्त्तव्यं खननं तस्य ना शौचं नोदक क्रिया॥
अन्येषामपि भिक्षूणां खननं पूर्व माचरेत्।

परमहंस की मृत्यु होने पर उनको कभी भी न जलावे, उनका खनन (पृथ्वी में गाड़ना) है न उनका अशौच (सूतक) है न जलदान है और भी बहूदकादि भिक्षुओं को पहिले ही खनन कहा है।

अश्वत्थस्थापनं कार्य्यं तद्देशेऽध्वर्य्युणा मुने।
अश्वत्थे स्थापिते तेन स्थापितोहि महेश्वरः॥

जहां खनन करे वहां और मार्ग में हे मुने! पीपल का वृक्ष लगा देवे क्योंकि पीपल के वृक्ष का स्थापन करने से मानों उसने महादेव का स्थापन किया है।

इस प्रकार नैष्ठिक ब्रह्मचारी का तथा अनाश्रमी का बहूदक सन्यास प्रतिपादन करके उनका धर्म मरण पर्यंत का शास्त्रोक

क्रम से कहा गया है । इस चैतन्य प्रकाशादि ब्रह्मचर्य जिस अवस्था में संस्कारपूर्वक धारण कर सकता है, प... यदि ज्ञान में निर्बलता है तो पर संन्यास को स्वीकार करे, ... तो इस ब्रह्मचर्य में मरण पर्यन्त रह सकता है निश्चय कर... उसका मोक्ष है इसमें संदेह नहीं है ।

ओंमित्यात्मन मव्यग्रो ब्रह्मण्यग्नौ जुहोति तत् ।
ज्ञानयज्ञः स विज्ञेयः सर्व यज्ञोत्तमोत्तमः ॥

शांत चित्त होके जो ब्रह्म अग्नि के विषे ओंकार का होम करता है अर्थात् अर्थ का चिन्तवन करता हुआ ब्रह्म ध्यान में तत्पर होके प्रणव का जप करता है । उसको सब यज्ञों में उत्तम ज्ञानयज्ञ कहते हैं । ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ।

शङ्कर अवतार

कलौरुद्रो महादेवो लोकानामीश्वरः परः ।
तदेव साधयेन्नृणां देवतानांच दैवतम् ॥
करिष्यत्यवताराणि शङ्करोनील लोहितः ।
श्रौतस्मार्त प्रतिष्ठार्थं भक्तानां हित काम्यया ॥
उपदेक्ष्यति तज्ज्ञानं शिष्याणां ब्रह्मसंज्ञितम् ।
सर्ववेदान्त सारं हि धर्मान्वेदनिदर्शितान् ॥
सर्ववर्णान्समुद्दिश्य स्वधर्मा ये निदर्शिताः ।
येतत्प्रीतानिषेवन्ते येन केनोपचारतः ॥
विजित्यकलिजान्दोषान् यान्ति ते परमं पदम् ।

(कूर्म्म पु० ३० अ० ।)

ब्रह्मचर्य ।

में रुद्र महादेव ही लोगों के श्रेष्ठ ईश्वर हैं, वही के पूजनीय हैं इससे मनुष्य उन्हीं की आराधना करे अग्निवर्ण भगवान शंकर जी श्रौतस्मार्त* अर्थात् वेद धर्मशास्त्र के मर्यादा रखने के लिए और भक्तों के कल्याणार्थ अवतार धारण करेंगे। शिष्यों को सब वेदों का सार ब्रह्मज्ञान और वेद में कहे हुए सर्व धर्मों का और सब वर्णों के स्वधर्मों का उपदेश करेंगे प्रसन्न होके जो कोई इन शिव जी को किसी भी प्रकार से सेवते हैं वे लोग काल के दोषों को जीतकर मोक्ष के पात्र होते हैं।

बौद्धोत्सादन कार्य्यार्थं शङ्करो नित्य रूप धृक् ।
अवतीर्णो महेशानि पंच प्रेत समन्वितः ॥

(वायु पुराणे ।)

बौद्धों के नाश के लिए शंकर जी पञ्चमहेश और अपने प्रेतगण के साथ अनित्यरूप धारण कर अवतार ग्रहण किया विशेष दिग्विजय से विदित होगा।

मठाम्नायः ।

युधिष्ठिर का शाका ३०४४ वर्ष रहा पश्चात् विक्रम का हुआ २६३१ युधिष्ठिर शाके के वैशाख शुक्ल ५ को श्री पूज्यपाद शङ्कराचार्य का जन्म केरल देश में विद्याधिराज के पुत्र, शिवगुरु वेदपारग के यहां हुआ। यज्ञोपवीत २६३६ शा० चैत्र शुक्ल ९ को हुआ, शाके २६३९ कार्त्तिक शुक्ल ११ को सन्यास लिया, श्री गोविन्दाचार्य से उपदेश शाके २६४०

---

* यत्तै विद्यादिके कर्म श्रौतं तद विधीयते ।
श्रुतिस्मृत्मकं कर्म स्मार्त्तं तद्दुच्यते ।

फाल्गुन शुक्ल २ को लिया, इसी साल से वहां र
रहे सूत्रों का भाष्य किया और शा० २६४६ ज्येष्ठ कृष्ण २०
बद्रीनारायण का स्थापन किया और ज्योतिर्मठ (जोसीमठ
का स्थापन किया, प्रतरदाचार्य (त्रोटकाचार्य) उस मठ
आचार्य हुए।

शारीर ब्रह्म मीमांसा भाष्य कर्त्ताहि सद्गुरुः।
मुनिः श्रीशङ्कराचार्य्यो लोकोपकरणायवै॥
चतुर्दिक्षु प्रदेशेषु प्रसिद्ध्यर्थं स्वनामतः।
चतुरश्च मठान्कृत्वा शिष्यान्संस्थापयद्विभुः॥
चकारसंज्ञामाचार्य्य श्चतुर्णां नाम भेदतः।
क्षेत्रश्च देवताश्चैव शक्तिं तीर्थं पृथक् पृथक्॥
संप्रदायांश्च नाम्नाश्च भेदश्च ब्रह्मचारिणाम्।
चतुष्टयं मठानां च शिष्यान् देवान् व्यवस्थया॥
एवं प्रकल्पयामास लोकोपकरणाय वै।
उत्तरे श्रीमठः(ज्योतिर्मठ)क्षेत्रं ख्यातो बदरिकाश्रमः॥
देवो नारायणः देवी शक्तिः पूर्णा गिरीति च।
संप्रदायोनन्दवारस्तीर्थंऽवालक्ष नन्दिका॥
आनन्द ब्रम्हचारीति गिरि पर्वत सागराः।
नामानित्रोटकाचार्य्यो वेदोऽथर्वण संज्ञकः॥
महावाक्यञ्च कथितमयमात्मा ब्रह्मेति च।
कुरु काश्मीर काम्बोज पांचालादि विभागतः॥

… मठ वशादेशा ह्युदीची दिगवास्थिता ।
पश्चिमे शारदापीठं द्वारका क्षेत्र मुच्यते ॥
कीटवारः संप्रदायस्तीर्थाश्रम पदेषते ।
देवः सिद्धेश्वरः शक्तिर्भद्रकाली च विश्रुता ॥
स्वरूप ब्रह्मचारीति आचार्यो विश्वरूपकः ।
विख्यात गोमती तीर्थं सामवेद मथोच्यते ॥
तत्व मसीति वाक्यञ्च जीवात्म परमात्मनोः ।
एका भावं विनिर्दिश्य नामान्युक्तान्यनुक्रमात् ॥

अवगत गोत्र । विश्वरूप आचार्य का दूसरा नाम सुरेश्वराचार्य था यह मठ० शा० २६४८ कार्तिक शुक्ल ५ को स्थापन हुआ ।

सिन्धु सौवीर सौराष्ट्र महाराष्ट्रास्तथान्तरः ।
देशाः पश्चिमदिक्स्थाये शारदा मठ भागिनः ॥
दिग्भागे दक्षिणेरम्यः शृंगेरी मठ उच्यते ।
वाराहो देवता तत्र रामक्षेत्र मुदाहृतम् ॥
तीर्थंतु तुङ्ग भद्राख्यं शक्तिः सा शारदेति च ।
(कामाक्षा उच्यते ।)
चैतन्य ब्रह्मचारीति हस्तामलक संज्ञकः ॥
सरस्वतीति नामानि भारती च पुरीति च ।
सम्प्रदायो भूरिवारो यजुर्वेद उदाहृतः ॥
महावाक्यञ्च कथित महं ब्रह्मास्मि नामतः ।
भूर्भुवः गोत्र ।

हस्तामलक का दूसरा नाम पृथ्वीधराचार्य था. शा० २६४८ फाल्गुन शुक्ल ९ को स्थापन हुआ। शा०. माघ शुक्ल १० को राजा सुधन्वा चेला हुआ बौद्ध प पराजय किया।

अन्ध्र द्रविड़ कर्नाट केरलादि प्रभेदतः।
शृंगेर्यधीना देशास्तेह्यवाची दिगवस्थिताः॥
चतुर्थः पूर्व दिग्भागे गोवर्द्धन मठः स्मृतः।
भोगवारः संप्रदायो वनारण्य पदे तथा॥
तस्मिन्देवो जगन्नाथः पुरुषोत्तम संज्ञकः।
तीर्थंच सर्वलोकेषु तत्राऽन्नैव च विश्रुतम्॥
प्रकाश ब्रह्मचारीति आचार्यः पद्म पादकः॥
स्नानं महोदधौतीर्थे ऋग्वेदः समुदाहृतः।
महावाक्यंच तत्रोक्तं प्रज्ञानं ब्रह्म संज्ञकम्॥

कश्यप गोत्र, आचार्य का दूसरा नाम सनन्दनाचार्य था यह मठ शा० २६५५ वैशाख शुक्ल १० को श्रीजगन्नाथजी की स्थापना की क्योंकि बौद्धों ने मूर्ति को भ्रष्ट कर डाली थी उसी समय मठ की स्थापना की।

अङ्ग वङ्ग कलिङ्गाश्च मागधोत्कलवर्वराः।
गोवर्द्धन मठाधीना देशाः प्राचीव्यवस्थिताः॥

इस प्रकार श्रीस्वामी जी ने धर्म संस्थापनार्थ चारों दिशा में चार मठ की स्थापना किया और आचार्य को मठाधीन देशों में सदुपदेश (वर्णाश्रमधर्म प्रतिपादन उपदेश) देते हुए विचरते रहना, ऐसी आज्ञा किया और शेष तीन मठ

* मामठ, शुद्ध शास्त्रार्थमठ ये पहिले से थे, जिनका प्रयोजन न समझ कर नहीं लिखा गया।

इति मठाम्नायः।

ब्रह्मचर्याश्रमोगीत श्चैलन्य ब्रह्मचारिणा।
कस्यनानन्दयेच्चेतः य*प्रियः शिवयोः सदा॥

नमः शिवाभ्यां नव यौवनाभ्यां परस्पराश्लिष्ट वपुर्धराभ्यां।
नगेन्द्रकन्या वृषकेतनाभ्यां नमोनमः शङ्करपार्वतीभ्यां॥

(शिवं शिवं भूयात्।)

विक्रमाब्द १९७२ चैत्र शुक्ल १४ सोमवार को समाप्त हुआ।

भजन।

डाल दो ब्रह्मचर्य की बान।

परब्रह्म परमात्मन् कहते ब्रह्मचर्य सो जान॥
मूंजी मेखला दंड कमंडल अजिन दुपट्टा तान॥
उभय काल में हवन करहु तुम वेद पढ़ो धरि ध्यान॥
भिक्षाचर्या गुरु शुश्रूषा करहु होय कल्यान॥
भारतवर्ष की यही भलाई तन मन से करलो मान॥
ब्रह्मचारी यह सबहिं सुनावत यही मुख्य है ज्ञान॥

ब्रह्मचर्य समाप्त।

---

* द्वन्द्वाद्रि नव भूवर्षे रुधौमासि सिते दले अवसा-
ऽसंस्कृतिप्रचारस्य पार्थिवेशिवयोस्तिथौ।

[illegible] शर्मा

[illegible]

[illegible]

[illegible]